नवक्षितिज

लेखक

हंसराज रहबर

हिन्दी ज्ञानमन्दिर लिमिटेड

२९, रुस्तम बिल्डिंग, चर्चगेट स्ट्रीट, बम्बई नं० १

कुशली को

जो मेरे जीवनमें आप ही आप

चली आयी

कहानी-सूची

दो शब्द

"गॉव के लोग कहानी को बात कहते हैं और क्या, कहानी बात ही तो होती है" मैंने कौशल्या की बात का जवाब दिया और फिर कहा, "जब मै छोटा था तो मुझे दो-तीन-सौ कहानियॉ आती थीं।"

"कहॉ से सीख ली थी, इतनी कहानियॉं?"

एक पुराना दृश्य नजरों में घूम गया।

गॉव मे एक बूढा चमार था। वह रात को चौक में बैठकर कहानी सुनाता—मैना कहती "कहो तोते बात, कटे रात।" और कहानी शुरू हो जाती।

इस बात को बहुत दिन बीत गये। मै अब गाँव मे नहीं रहता। पर ऐसा लगता है कि वह बूढा चमार—अमर व्यक्ति—हमारा पूर्वज अब भी चौक में बैठा कहानी सुना रहा है। और युग युगान्तर से सुनाता आया है। कहानी चाहे तोता ने मैना से कही अथवा मनुष्य ने अपने साथी-मनुष्य से कही है, उसमें मानव-हृदय की आशा और अभिलाषा निहित रही है। जैसे जैसे आदमी प्रकृति के विरुद्ध अपने सघर्ष मे कामयाब होता गया, उसका ज्ञान बढ़ता गया, बुद्धि और सम्पत्ति का विकास होता गया। कहानी का भी विकास होता गया। जबसे उसने वैज्ञानिक ढग से सोचना शुरू किया, कहानी ने भी वैज्ञानिक रूप धारण कर लिया। अलादीन के चिराग का प्रकाश हमारे कहानी-साहित्य के मार्ग को निर्धारित करता है। लेकिन अलफ़-लैला अथवा पचतत्र की कहानियॉ हमारी वैज्ञानिक बुद्धि का मनोरजन नहीं कर पाती।

और अब कहानी केवल मनोरजन का ही साधन नहीं रह गई। जीवन में साहित्य का एक विशेष स्थान और एक निश्चित उद्देश्य है। लिखने से पहले सोचना पड़ता है, कि जो कुछ मै लिख रहा हूँ, वह सारगर्भित भी है। जीवन की जटिल समस्या पर उससे कुछ प्रकाश भी पडता है। यहॉ मै एक बात कह दूँ, बहुत से लोगो की यह धारणा बन गई है कि उस तरह तो सारा साहित्य प्रचार-मात्र बनकर रह जायेगा। यह धारणा दुरुस्त नही। साहित्य, प्रचार उस समय बनता है, जब कहानी-लेखक फिलासफी के किसी सिद्धात अथवा एक आदर्श को लेकर कहानी लिखने बैठ जाता है। पात्र और कथानक खुद घडता है। अपनी बात ऊपर लाने के लिये कठपुतली पात्रों से जो बात चाहता है, कहला लेता है और कथानक की अनमेल कडियो को जोडता जाता है। उसकी कहानी कल्पना की प्राणहीन वस्तु बनकर रह जाती है। इसको हम निरा प्रचार कह सकते है, जो पाठक पर पर्याप्त प्रभाव भी नही डालता।

इसीके विपरीत अगर लेखक के कथानक में सचाई है और जिस पृष्ठभूमिपर उसे चित्रित किया जा रहा है, वह उसकी आखो के सामने है और उसके पात्र सजीव और

सप्राण व्यक्ति है, जो बात वे कहते है, वह उस परिस्थितिके अनुकूल है, जिसमें वे रहते है, तो निश्चय ही कहानी, साहित्य की चीज होगी। समस्त फिलासफी जीवन की घटनाओ से जन्म लेती हैं। कथाकार का काम फिलासफी को जिंदगी से जन्म लेते दिखाना है, न कि जो फिलासफी जन्म ले चुकी है, मनुष्य को उसे तोते की तरह रहते और नारे लगाते दिखाना है। मनुष्य मुख्य है, सिद्धात और आदर्श गौण है, मनुष्य के जीवन की सच्ची और सीधी-सादी बात कहना ही असल कहानी है। सचमुच कहानी और बात में कोई अन्तर नही। अन्तर है तो कहने के ढग मे, और वह इस प्रकार स्पष्ट हो सकता है--

कहानी-लेखक अथवा कोई भी कलाकार न सिर्फ जिंदगी पेश करता है, बल्कि जिंदगी में जो कमी महसूस होती है, उसे भी पूरा करता है। अर्थात् वह इस जिंदगी की बुनियादो पर बेहतर जिंदगी का निर्माण करता है।

कहानी लिखते समय मैने हमेशा इस बात को मद्दे-नजर रखा है। और इसी को मै प्रगतिवाद मानता हूँ। इस सग्रह की कोई भी कहानी कल्पित नहीं। मेरी अपनी और लोगोंकी आप बीती हैं, जिनमें मैं रहता हूँ। मैंने जिंदगी का सम्पादन भर किया है। छोटी बडी घटनाओं को इस ढग से बयान किया है कि जो बात मैं कहना चाहता हूँ, कहानी के अन्त में वही बात पाठक के मन में सबसे ऊपर हो, और जो कमी मै महसूस करता हूँ, उसे भी वह पूरी तीव्रतासे महसूस करने लगे।

ऋषि नगर
लाहौर

हसराज 'रहबर'
१५-३-४७

नव-क्षितिज

महेन्द्रने सुबहकी सैर स्थगित कर दी थी और अपने कमरेमें बैठा उस बुढियाका इन्तजार कर रहा था, जो कल शाम को भी आई थी, पर उससे बिना मिले ही लौट गई थी। जेलमें बन्द अपने इकलौते बेटेकी बाते उसके साथी कैदीसे सुननेके लिए वह कितनी उत्सुक थी। शायद उसे रात-भर नींद भी न आई हो। महेन्द्र खुद जाकर उससे मिलता। लेकिन वह ग्वालमण्डीमे रहती थी और उसे नई और पुरानी अनारकलीके थानोंकी सीमासे बाहर जानेकी आज्ञा न थी। सरकारने उसे रिहा क्या किया था, बाँधकर दाना-दुनका चुगने-भरको छोड दिया था।

जगके कारण इस दुनियामे रहना भी तो कोई आसान बात न थी। महेन्द्रने दो-चार दिनमे ही देख लिया था कि इन तीन सालोमे जब कि वह जेलमे था, जमाना कितना बदल गया है। भयानक महँगाई, सरकारी आतक, आर्डिनेन्सोका राज, जनताके मनमें भय और आशका। उसके बहुतसे साथी अब तक जेलमें पडे थे और जो रिहा हो कर आए थे, वे अपने-अपने इलाकोंमे नजरबन्द कर दिए गए थे। न आराम, न आजादी। फिर न जाने उसकी आत्मा दुनियामें क्या देखनेके हेतु जेलसे छूट आनेके लिए छटपटाया करती थी?

उसके लिए कमरेमे बैठना कठिन हो जाता था। वह सवेरे ही निकल जाता और दिन-भर बिना मतलब इधर-उधर घूमता रहता। रात गए लौटता और चारपाई बिछाकर सो रहता और उसमें यदि घण्टा, सवा घण्टा बैठना पडता, तो तबीयत घबराने लगती। उसे यह छोटा-सा कमरा क्षण-प्रतिक्षण तग होता हुआ मालूम हो रहा था—मानो दीवारें एक-दूसरेके करीब आ रही हैं और उसकी आत्माको बीचमे भींचकर मसल देना चाहती हैं। काश कि वह बुढिया जल्द आय और वह चन्द मिनट उससे बाते करके इस पिंजडेसे बाहर निकले।

वह यह सोच ही रहा था कि बुढियाने कमरेमें प्रवेश किया। महेन्द्र आदरके लिए उठ खडा हुआ। उसे अपनी कुर्सी पर बिठाया और खुद सामने रखी छोटी-सी मेजके एक नुक्कडपर बैठ गया। बुढियाकी उम्रका अन्दाजा लगाना मुश्किल था। लेकिन वह बूढी थी—बहुत बूढी। उसका सुन्दर और कोमल चेहरा झुर्रियोंसे भरा था। कमर किसी कदर झुक गई थी। तांगेसे उतरकर कमरे तक चार कदम चलकर आनेमें ही उसकी सॉस फूल गई थी। परन्तु उसकी ऑखे उस आदि और पवित्र ज्योतिसे चमक रही थीं, जो केवल मॉको प्राप्त होती है। जब वह महेन्द्रकी ओर ध्यानसे देख रही थी, तो ऐसा मालूम होता था कि उन प्रतिभापूर्ण ऑखोंसे कोमल प्रकाशकी किरणें निकल कर न सिर्फ कमरेमें ही फैल रही है, बल्कि महेन्द्रकी आत्मामे प्रवेश कर उसके भीतरका अन्धकार भी दूर भगा रही है।

वह चुपचाप बैठी महेन्द्रकी ओर देखती रही। शायद वह यह जान लेना चाहती थी कि इतने दिनों जेलमें रह लेनेके बाद उसे यह दुनिया कैसी लग रही है? जेलसे लौटने वाला महेन्द्र जेल जानेसे पहलेके महेन्द्रसे मुख्तालिफ तो नहीं है? उसका शरीर कमजोर तो नहीं हो गया है? उसकी आत्मा कही सुकड तो नही गई है? वह मनुष्य था और आया अब मनुष्य ही लौटा है या नहीं? यही या इसी प्रकारके दूसरे विचार उसके मनमें उठ रहे थे, जिनका जवाब उसे चाहे कुछ ही मिला हो, लेकिन अन्तमें वह मुस्करा पडी थी और उसने स्नेह-सिक्त स्वरमें पूछा—'तुम कब रिहा हुए बेटा?'

'परसो, नौ तारीखकी शामको।'

'तुम्हारे साथ और लोग भी आए होंगे?'

'मैं तो अकेला ही आया हूँ। और आदमी पहले छूट चुके थे।'

इसके बाद वह बुढिया मालूम नही क्या पूछना चाहती थी। उसके होंठ तनिक खुले, लेकिन कुछ सोचकर वह चुप हो गई। महेन्द्रने खुद ही कहा—'सरकार हर छ: महीनेके बाद नजरबन्दों के मुकदमोपर गौर करती है। जिन्हें मुनासिब समझती है, छोड़ देती है। बाकी के लिए छ: महीने और जेलमें रहनेका नया हुक्म भेज देती है। मुझे भी वह हुक्म मिल चुका था, लेकिन पन्द्रह दिन के बाद अपने-आप ही छोड दिया। न जाने क्यों?'

'तुम्हारी कैदके दिन खत्म हो चुके थे, बेटा!'—बुढियाने सुखकी सॉस लेते हुए कहा—'अच्छा बेटा, पूरनचन्द तुम्हारे साथ ही रहता था न?'

'जी हॉ, हमारे कमरे बिलकुल पास-पास थे।'

'तुम कमरोंमें बन्द ही रहते थे या आपसमें मिल-जुल भी सकते थे?'

'कमरे खुले रहते हैं। कांग्रेसी कैदी आपसमें मिल-जुल सकते हैं। इकट्ठे बैठते और इकट्ठे खेलते हैं। किसी प्रकारकी बंदिश नहीं।'

'आदमी अकेला बैठे तो दिन काटना मुश्किल हो जाता है'—बुढियाने जिन्दगी भरके अनुभवसे कहा और फिर बोली—'हॉ तो पूरनचन्द वहॉ कभी उदास तो नहीं होता था ?'

'जी नहीं, बिलकुल खुश रहता था।'

बुढिया एकदम चुप हो गई। उसकी ऑंखोंसे सन्तोष या असन्तोष कुछ भी व्यक्त न हो रहा था। महेन्द्रने महसूस किया कि भावनाओंसे रिक्त नेत्रोंका प्रश्न कितना दुखप्रद होता है ! वह वेदना-युक्त स्वरमें अपनी ही बातका प्रतिवाद करते हुए बोला—जब आदमी विवश हो, तो खुश रहना ही अच्छा है।'

'ठीक है बेटा, उसे कैद तो अवश्य काटनी थी। इस तरह न जाता, तो किसी और तरह जाता। इस काममे किसी प्रकारकी बदनामी तो नहीं, नेकनामी ही मिलती है। दुख-सुखका क्या है, वह तो शरीरके साथ ही लगा है।'

'हॉ मॉ, किस्मतका लिखा तो भुगतना ही पडता है।' महेन्द्रने मुक्त भावसे कहा। वैसे वह किस्मत के फलसफेमें कदाचित विश्वास नहीं रखता था; पर इस समय इसके अतिरिक्त और कुछ कहना बुढियाके नेत्रोंमें जो सुखमय भावना उमड आई थी, उसे आहत करना होता। वह बुढियाकी ओर देख रहा था और उसकी निरानन्द प्रात: ओसमें नहाई कलीके सदृश सुन्दर ऑखें आकर्षित होती जा रही थीं। सहसा बुढिया पूछ बैठी—'पूरनचदने कच्छे मॅंगवाए थे, वे उसे मिल गए होंगे ?'

'जी हॉ, मिल गए थे।'

'बाहर तो वह कच्छे कभी नहीं पहनता था। जेलमें पहनने का हुक्म होगा तुम्हें ?'

'हुक्म तो कोई नहीं, वैसे ही पहन लेते हैं। उठने-बैठने और खेलनेमें जरा सहूलियत रहती है।'

क्षण-भरके लिए खामोशी रही। फिर बुढिया बोली—'सुना है कि तुम सारे लाहौरमें घूम नही सकते ?

'जी हॉ, इसीलिए तो आपको तकलीफ उठानी पडी।'

'तकलीफ क्या है बेटा, दो बार मुलाकातको गई हूँ। आज-कल गाडीके सफरमें आदमी मर रहता है। और फिर काले कोसों दूर। इतनेपर भी उसे देखा जरूर है, पर बातें कुछ भी नहीं हुई सिपाही कान लगाए सिरपर बैठा रहता है। कुछ कहते-सुनते डर लगता है कि कहीं झिडक न दे या बादमें बेटे पर खफा न हो। समझमें नहीं आता, वह क्यों बैठा रहता है वहीं ?'

'कानून है सरकारका'—महेन्द्रने उत्तर दिया और वह व्यंग भावसे मुस्कराया। बुढिया भी मुस्कराई, लेकिन उसकी मुस्कराहटमे व्यग न था। उसके चेहरेसे ऐसा निरीह भाव झलक रहा था, जो बच्चेके चेहरेपर उस समय प्रकट होता है, जब वह कोई ऐसी बात देखता या सुनता है, जो उसके लिए अत्यत अचरज की तो होती है, पर वह उसे समझ नहीं सकता। महेन्द्रके दिमागमें व्यग-भाव दब गया और वह सजीदगीसे सोचने लगा—यह अजीब 'कानून' है, जो माँ-बेटेके प्रेममें भी दखल देना अपना अधिकार समझता है।

'क्या सोच रहे हो बेटा?'—बुढियाका सवाल सुनकर महेन्द्र चौंका और बोला—'कुछ नही माँ वैसे ही।'

'न बेटा, कोई ऐसी-वैसी बात हो, तो मुझे बता दो। मैं इतनी दूरसे आई हूँ और जानना चाहती हूँ कि उसे वहाँ किसी किस्मकी तकलीफ तो नहीं है।'

'जी नहीं, मै सच कहता हूँ। उसे कोई तकलीफ नहीं। नजरबन्दोंसे काम नहीं लिया जाता, उन्हे सजा नहीं मिलती। सरकारने खुराक बाँध रखी है, वह उन्हें देनी ही पड़ती है। बस इतनी बात है कि जब तक उन्हें छोड न दिया जाय, वे जेलके दरवाजेसे बाहर नही आ सकते।'

'अन्दर रहनेका तो कुछ डर नहीं बेटा। जितने दिन उसके भाग्यमें जेलका दाना-पानी लिखा है, वह तो खाना ही पड़ेगा।' कहकर बुढियाने इत्मीनानकी साँस ली और चुप हो गई। फिर वह तनिक आगेको झुकी और प्रेम-भरी दृष्टिसे महेन्द्रकी ओर देखते हुए बोली—'मुझे एक और बातका खटका लगा रहता है। तुम तो अन्दरसे आ रहे हो, सब कुछ जानते हो, एक बात बताओगे?'

'क्यों नहीं माँ, तुम पूछो तो सही।' महेन्द्रने कहा।

'मैने सुना है कि जो लोग जेलमें रह गए है, उनके लिए सरकारने कोई नया कानून बनाया है। सुना है, अब उनपर अधिक सख्ती की जायगी। क्या यह सच है बेटा?'

उसका शरीर भयसे काँपने लगा। मानो उसने कोई स्वप्न देखा हो, जिसमें भयानक और हिंसक दानव उसके बच्चेको घेरे खडे हो और लोहेकी गर्म-गर्म शलाखें हाथमें लिए उसे डरा रहे हों।

'जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। किसीने आपसे गलत कहा होगा।'

इस जवाबसे उसे कुछ तसल्ली तो हुई, मगर वह फिर बोली—'पर हुकूमतका क्या एतबार? अगर वह सख्ती करने लगे, तो कौन रोकनेवाला है?'

महेन्द्रको उस सख्तीका खयाल आया, जो उसे और उसके साथियोंको किलेमें सहन करनी पडी थीं। अगर जेलमें भी इस प्रकारकी सख्तियाँ रवॉ रखी जावें, तो वाकई

हुकूमतको कौन रोकनेवाला है? वह असमजसमें पड गया कि बुढियाकी तसल्लीके लिए क्या जवाब दे? सोचनेके लिए भी रुकना उचित न था। वह बोला—'रोकनेवाला तो दरअसल कोई नहीं, पर उन्होंने वतनपरस्तीके सिवा कोई जुर्म भी तो नहीं किया, कि जिस कारण हुकूमत उनपर सख्ती करे। जो लोग छोड दिए गए और जो लोग अभी तक जेलोंमे हैं, दोनोंको इस सन्देहमें गिरफ्तार किया गया था कि वे बाहर रहते हुए गडबड करेंगे। जब तक हुकूमतका यह सन्देह दूर नहीं होता, वह उन्हें बन्द रख सकती है; पर उनके साथ सख्ती नहीं कर सकती।'

'बहुत अच्छा बेटा, तुम्हे सब खबर है। इसीलिए तो तुमसे पूछने आई हूँ। तुमसे मिलकर आत्मा ठडी हो गई। तुम्हे देखकर मानो मैने अपने पूरनचन्दको देख लिया।'

बुढियाकी आँखोमे ममता भरी थी, जिसे देख महेन्द्रको अपनी बूढी मॉका ध्यान आया, जो सैकड़ों मील दूर थी और जिसे वह मिलने नही जा सकता था। उसे खयाल था कि शायद किसी दिन वह खुद ही आय। कुछ क्षण बुढिया गुमसुम बैठी रही। उसने कमर कुर्सीकी पुश्तसे टेक ली थी। दायॉ बाजू पास ही लटक रहा था, बायॉ गोदमे पडा था, और उसकी आँखे दूर शून्यमें कुछ ढूँढ रही थीं। उनमें थकान न थी, निराशा न थी, विवशताका दुखप्रद एहसास था—उस मुसाफिरकी तरह, जो अपने जीवनकी तमाम राहें आरामसे तय कर चुका हो, लेकिन जब वह मजिलके निकट पहुँचता है, तो कोई व्यक्ति उसके मार्गमें एक भारी पत्थर फेक देता है। वह उसे उठा नहीं सकता, फॉद नहीं सकता। इधर-उधर रास्ता ढूँढता है, पर न पाकर चुप हो जाता है और किसी सहारेका मुन्तजिर है। बुढियाका यह चित्र बडा करुणोत्पादक था। महेन्द्र बैठा उसे देखता रहा। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह कभी नही बोलेगी। लेकिन उसके होंठ हिले और वह एकदम बोली—'इस दु.खका अन्त भी होगा?'

'होगा क्यों नहीं मॉ, जब इतने आदमी कोशिश कर रहे है? तो जरूर होगा।'

'मनमे तो मेरे भी यही बात उठती है, पर कुछ समझमें नही आता, बेटा!'

और फिर वह अपने-आपमें खो गई। न जाने वह किस भविष्यका चिन्तन कर रही थी? लेकिन मुखपर एक विचित्र प्रकारकी प्रसन्नता नाच उठी थी। ऐसा मालूम होता था, जैसे बूढे शरीरमें जीवनकी नई लहरें दौड रही है। उसके चेहरेकी झुर्रियॉ मिट गई थीं, होंठ आप ही आप हिल रहे थे और उसकी सॉसें वातावरणको पवित्रता और प्रेमसे शराबोर कर रही थीं।

अन्तमे वह उठी और महेन्द्रके सिरपर हाथ फेरकर धीरे-धीरे चलती हुई कमरेसे बाहर निकल गई।

राजाराम

'सुनाइए राजारामजी, अकेले बैठे क्या सोच रहे है आप ?' प्राणनाथ ने पूछा। 'अकेले ?' राजाराम ने आश्चर्य प्रकट किया और दोनो हाथों को स्टेजी ढंग से हिलाते हुए "कहा, हजूमे ख्यालात, जुलूसे ख्यालात, तूफाने ख्यालात। राजाराम अकेला कैसे रह सकता है ? "

वाकई, अकेला वह महसूस करे, जिसके पास सोचने के लिए न दिमाग हो, न बात करने के लिए जुबान। प्राणनाथ ने इसके बाद राजाराम को चारपाई पर लेटे लेटे अपने आपसे, रोशनदान मे बैठी चिडिया से, और फर्श पर रेंगती चींटी से बाते करते देखा है। वैसे वह मिलनसार इतना है कि जब देखो दो–चार आदमियो में बैठा बाते कर रहा है; अगर दो–चार न हुए तो बाबूसिंह तो कहीं गया नहीं। उसे साथ लिये घूम रहा है और जीवन के सत्तर वर्ष मे जो जो अनुभव प्राप्त किये है, उनकी व्याख्या कर रहा है। सुननेवाला और सुनानेवाला दोनों इतने मग्न है कि उन्हे और किसी बातकी सुध-बुध ही नहीं। अगर ये बातें सुबह–सबेरे आरम्भ हुई है, तो दोपहर हो गयी। इधर खाने पर बुलाया जा रहा है, उधर से जवाब मिलता है— 'जरा ठहरो, अभी आये, अभी आये।' कौन जाने यह 'अभी' एक घण्टा लम्बा होगा या दो घण्टे, या इससे भी अधिक। और जब ये बाते शाम को आरम्भ होती है तो रात के एक–एक दो–दो बज जाते है। लोग कहते है—'राजारामजी नीद आई, सो आने दो।' तो उत्तर मिलता है—'वाह अभी तो दिन छिपा है। सारी रात अपनी है। खूब सोना। सुबह उठकर दफ्तर थोडी जाना है।' इस उत्तर के बावजूद जब उसें रात के अधिक बीत जाने का ज्ञान होता है तो बातचीत कल पर मुल्तवी कर दी जाती है। लेकिन सर्दियों में इस एतराज की भी गुंजायश नहीं। प्राणनाथ ने कड़े जाडे मे भी बाबूसिंह और राजाराम को रात बीते दीवार के पास बैठे बाते करते देखा और बाहर बैठने का कारण यह बताया गया है कि अन्दर बैठे तो नींद आ जाती है।

ये बातें जो कभी खत्म होने मे ही नहीं आती और जिन्हे राजाराम इतनी संलग्नता से सुनाता और बाबूसिंह श्रद्धा से सुनता है, अत्यत रोचक, गूढ और विविध विषयों पर होतीं है। शायद इसका कारण यह है कि राजाराम जेल–जीवन बड़े इत्मीनान से बिता रहा है, वरना वह भी उन लोगो के साधन काम मे लाता, जिनमे किसी की पत्नी बीमार है और किसी का बच्चा, दर्खास्त पर दर्खास्त जा रही है कि और न हो तो पॉच सात दिन के लिये ही बाहर की दुनिया देख आने की इजाजत मिल जाये। राजाराम के माता–पिता

दोनों ही एक महीने के अदर-अदर बारी बारी से परलोक चले गये। बीमारी का तार आया, मरने की खबर पहुँची। साथी कैदियो ने बहुतेरा समझाया कि राजारामजी पैरोल की दर्खास्त दे दो। लेकिन वह न माना और कहने लगा।

'मा–बाप तो मरने वाले थे, मर गये। उनकी मौत का गम बाहर जाकर कम थोडे ही हो जायगा। राजाराम जिस हकूमत का बागी है उस हकूमत से दर्खास्त कभी नहीं करेगा।'

स्वर्गीय माता–पिता की उम्र उस समय सौ के लगभग थी और दोनों जने नहाने–खाने और चलने–फिरने के योग्य थे। इसलिए राजाराम को विश्वास था कि वह भी इतनी ही लम्बी उम्र पायेगा अर्थात् उसे कम-से-कम तीस साल अभी और जीना है—और जीना है शान और सम्मान से। अडसठ साल का हो गया। स्वास्थ्य वैसे का वैसा बना है। चलने लगे तो मीलों तक चला जाये। न टॉगे थकती है न सॉस फूलती है। छाती नौजवानो की तरह उभरी रहती है। शरीर मे भुकाव का नाम तक नहीं। हॉ, ऑखे तनिक कमजोर हो गयी है और दो चार दॉत भी झड गये है। मगर बोल क्या हैं, शेर की गरज है, जो फेफडों की तन्दुरुस्ती और दिल की मजबूती का स्पष्ट प्रमाण है। दिल मजबूत है तभी तो सब दु:ख चुपचाप सहन कर रहा है। पत्नी जवानी में मर गयी थी। उससे एक लडकी है जो अब अपने घर आराम से रहती है। दो बच्चो की मॉ है और उसका पति बैक का मैनेजर है। मॉ-बाप की चिन्ता थी, वे भी चल बसे। अब घर पर एक बडा भाई है। मुसीबत यह है कि वह अन्धा है। मगर इतने बडे ससार मे जहॉ करोडो इन्सान बसते है, उसका गुजारा भी हो रहा है। राजाराम को सिर्फ देश की आजादी की बातें सोचना और आजादी के स्वप्न देखना है।

ये बातें और ये स्वप्न भी खतम नहीं होते।

राजाराम अब चौदहवीं बार कैद हुआ है। जब देश में असहयोग आन्दोलन चलता है, उस समय बहुत से लोग गिरफ्तार होते है। लेकिन जब कोई आदोलन न हो, बल्कि अक्सर प्रान्तो मे कॉग्रेस मत्रिमडल कायम हो, उस समय जेल में रहना कठिन तपस्या है। पर उस समय भी अखबारों मे छपता रहा है कि राजारामजी अमुक भाषण के कारण गिरफ्तार हो गये। मानो जब से उसने पूर्ण स्वतन्त्रता का व्रत लिया है, तब से उसने निजी तौर पर अंग्रेजो से कभी समझौता नहीं किया। इसलिये जब कभी वह बोलने के लिये स्टेज पर

खडा होता है, तब वह यह समझता है कि इस तकरीर से देश के एक कोने से दूसरे कोने तक विद्रोह की आग भडक उठेगी । पर होता यह है कि हुकूमत उसे गिरफ्तार करके जेल मे डाल देती है ।

उसने जेल-यात्रा कब से आरम्भ की, इसकी कहानी वह आप ही सुनाया करता है । १९०५ मे श्री गोपालकृष्ण गोखले लाहौर आये थे तो किसी कवि ने कविता पढी थी । टीपा का बन्द राजाराम को अबतक याद है—

"गोखिले ! ऐ गोखिले !

कुछ तुम खिले, कुछ हम खिले ।"

—उस समय गोखले ने जो भाषण किया था, वह इतना प्रभावशाली था कि उसका प्रभाव राजाराम की अन्तरात्मा मे पैठकर रह गया और वह उसी दिन से राजनीति मे भाग लेने लगा । अब उसका अपना भाषण गोखले के उस भाषण के रग में होता है और सुननेवालो पर उसका वही प्रभाव पडता है, जो गोखले के उस भाषण का राजाराम पर पडा था । यही कारण है कि राजाराम तकरीर करने के किसी अवसर को खो देना राष्ट्र के लिये एक ऐसी क्षति समझता है, जिसकी पूर्ति असम्भव है । आम जलसो की तो बात ही क्या, वह तो हाईकोर्ट मे भी तकरीर करने से नही बाज आया । यदि पूँजीवादी प्रेस ने उस भाषण को छापने का साहस किया होता तो राजाराम के कथनानुसार वह भावी सन्तान के लिये ऐतिहासिक यादगार बन सकता था । मगर अफसोस राजाराम को इस वैज्ञानिक युग मे भी वह भाषण दूसरो तक जुबानी ही पहुँचाना पडता है ।

बात यह है कि राजाराम जब से अपना जिला छोड कर लाहौर आया था, तब से अर्जीनवीसी का काम करता था । दो साल हुए वह अपने होशियारपुर वाले सनसनीखेज भाषण के कारण जेल मे था । पुराना लायसेंस दाखिल करके समय पर नया लायसेंस प्राप्त न कर सका । रिहाई के बाद दर्खास्त दी और देरी की वजह स्पष्ट लिख दी कि मै उस समय जेल में था । होईकोर्ट ने उसे तलब करके पूछा कि सरकार के विरुद्ध बगावत करके जेल जाना, देरी की माकूल वजह नही हैं, बल्कि जब सरकार के विरुद्ध तुम्हारा रवैय्या इस प्रकार का है तो बताओ तुम्हारा लायसेस ही क्यों जब्त न कर लिया जाय ।

अदालत के इस सवाल का उत्तर देने के लिये पहले तो राजाराम ने अपने बयान हिन्दुस्तानी भाषा मे देने की आज्ञा माँगी, और फिर गर्दन उठाकर कहना शुरू किया —

जनावआली ! मै जानता हूँ कि अगर मै दर्खास्त में बीमारी या कोई ऐसा ही ऊटपटांग कारण लिख देता, तो मुझे आसानी से लायसेस मिल जाता ।

लेकिन देरी का असल कारण लिखकर म दुनिया को बताना चाहता था कि एक भला आदमी किसी हालत मे भी सचाई को छिपाना नही जानता। दूसरे, मै अदालत को जताना चाहता था कि आजादी के लिये जेल जाना कोई शर्म या छिपाने की बात नहीं, बल्कि आपको इस बात पर फख्र करना चाहिये कि आपकी अदालत का एक अपीलनवीस देश की आजादी को लायसेंस प्राप्त करने से कहीं अच्छा समझता है। और वह आजादी न सिर्फ उसकी आजादी है, बल्कि आपकी आजादी है, लाहौर शहर की आजादी है, पंजाब की आजादी है, हिन्दुस्तान मे बसनेवाले चालीस करोड इंसानो की आजादी है ....'

'मुख्तसिर, मुख्तसिर।' जज ने टोककर कहा।

'जनाबेआली! आप तसल्ली रखें, मैं अपनी बात बहुत थोडे शब्दों में अर्ज करूँगा। मैने उस समय कांग्रेस में काम शुरू किया, जब १९०५ में गोपाल कृष्ण गोखले लाहौर आये थे। उस समय एक कवि ने कविता .'

'आप फिर तकरीर करने लगे। जो वजह बयान करनी हो, सिर्फ वही कहो, हम तकरीर नहीं सुन सकते।' जज बोले। 'जनाबेआली! अगर आप तकरीर नहीं सुन सकते तो मुकदमा दो-तीन घण्टे के लिये मुल्तवी कर दें। मैं अपना बयान लिख देता हूँ। हजारो वकील और अपीलनवीस जो देश की आजादी के लिये जेल जाते है, मै उन सबके लिये फैसला करवा लेना चाहता हूँ। यह कैसे मुमकिन हो सकता है कि हम आजादी जैसे जरूरी सवालको अलग रखकर जेलसे बाहर बैठें, नये लायसेंस लेने का इंतजार करते रहें। यह तो हिम्मत की कमी और गुलामी .'

'गुलामी' का शब्द राजाराम के मुँह मे रह गया। जज ने अब के उसे तीसरी बार टोकते हुए कहा कि हम न तो मुकदमा मुल्तवी कर सकते है और न तकरीर सुन सकते हैं, अगर कुछ जरूरी कहना है तो संक्षेप मे कहो।

यह बात सुनकर राजाराम को जोश आ गया और वह गरजकर बोला—'इसका मतलब तो यह हुआ कि मै अपने विचार प्रगट ही न करूँ।' और दायें बाजू को पूरी लम्बाई से घुमाकर फिर कहा, 'रखिये अपने लायसेंस को, मै ऐसी हुकूमत की अदालत में काम ही नहीं करना चाहता।'

राजाराम ने यह शब्द इतने जोर से कहे थे कि जज, वकील, मुंशी और अदालत की दीवारें तक कॉप उठी थीं। अदालत के अपमान का मुकदमा क्या चलता, वह पहले ही नजरबन्द था। बात यहीं समाप्त हो गयी और अपीलनवीसी का पेशा भी।

मगर इस पेशे मे उसे जो सफलता प्राप्त हुई, उसकी याद अब तक बाकी है। उसका कानून सम्बन्धी ज्ञान इतना बढा हुआ था कि योग्य से योग्य जज को भी उसकी लिखी अपील रद्द करने का साहस न पडता था। साधारण वकीलो की तो बात ही क्या, विलायत पास बैरिस्टर भी उनसे कानूनी मशविरा लेने आया करते थे। कौन जज और कौन वकील उसे नही जानता था? सरकार के मत्री तक उससे परिचय प्राप्त कर लेना गौरव की बात समझते थे। फिर इस पेशे से उसने डेढ डेढ दो दो हजार रुपये महीना कमाये है। यह ख्याति और यह आमदनी सिर्फ उसी के भाग्य मे आयी थी, वरना दुनिया में इतने अपिल-नवीस बसते है, पर कोई उनकी बात तक नही पूछता।

एक यही बात क्यो, उसकी हरेक बात मे विशेषता रहती है। इस उम्र मे यह स्वास्थ्य चौदह बार कैद होने के बावजूद, आजादी की यह भावना और भाषण करने का यह प्रभावशाली ढग क्या विशेषता के चिन्ह नही? और फिर एक दिन सुबह सैर करते समय राजाराम ने बताया था कि ~~जान~~—लारेंस बाग मे जो सैकड़ो लोग सुबह सुबह सैर करने जाते है, वे सब उसका अनुसरण कर रहे है, क्योकि राजाराम उन चन्द नौजवानों में से एक है, जिन्होने पहले लाहौर में सैर का रिवाज डाला।

अतीत की बात छिड जाने पर शिक्षा का जिक्र भी छिड जाता है। तो वह बताया करता है, कि उनके जमाने की शिक्षा इतनी सर्वांगीण और सम्पूर्ण थी, कि मात्र चार किताबे पढकर आदमी को दुनिया के प्रत्येक विषय का पूर्ण ज्ञान हो जाता था। और जो आदमी वे चार पुस्तकें पढ लेता था वह या तो बादशाह बनता था या वजीर। राजाराम ने भी वे चार किताबे पढ रखी हैं, और वह उनके नाम अक्सर बताया करता है—गुलिस्तॉ, बोस्तॉ, इशाये माधोराम और हरकरण।

एक बार किसी ने पूछा—'राजारामजी, जब आपने य चारों पुस्तकें पढ रखी है, तो फिर क्या बात है कि आप न तो बादशाह बने और न वजीर?'

इस पर राजाराम ने सम्राट्-सुलभ गौरव से उत्तर दिया था—'राजाराम उस ब्रिटिश सरकार का बागी है जिसके राज मे कभी सूरज नहीं डूबता और बादशाह का बागी किसी तरह बादशाह से कम नहीं। शेखसादी ने फरमाया है—

'खिलाफे रायसुल्ता राय जुस्तन, बखूने खेश बासद दस्त शुस्तन।'

शेर पढकर राजाराम ने झाग से भरे होठों को पोंछ और आवाज को पहले से अधिक ऊँचा करके व्याख्या की—'बादशाह की राय के खिलाफ राय ढूँढना अपने खून से आप हाथ धोना है?'

रही शिक्षा की बात। इसमे सन्देह ही क्या कि राजाराम की शिक्षा सर्वांगसम्पूर्ण हुई है। वह जिस विषय पर जब चाहे बिना झिझक गुफ्तगू कर सकता है। इसका यह मतलब नहीं कि इन पुस्तकों में भूत, वर्तमान और भविष्य की हरेक बात लिख दी गयी है। इन पुस्तकों को पढकर आदमी का दिमाग इतना उन्नत हो जाता है कि फिर उसमे दुनिया का प्रत्येक विचार ईश्वर के भेजे ज्ञान की तरह उत्पन्न होने लगता है।

एक दिन प्राणनाथ डाक्टर सन्त से जीवन और आत्मा के विषय पर बातचीत कर रहा था कि इस बीच राजाराम वहाँ आगया और 'आत्मा' का शब्द उसने भी सुन लिया।

'आत्मा!' वह एक दार्शनिक की तरह मुस्कराया और कहने लगा, 'आत्मा की बात आप कुछ न पूछिये। ये दरख्त, वे अमर आत्माये है, जिन्हें परमात्मा की तरफ से हमेशा खडे रहने का हुक्म मिला है।'

डाक्टर सत और प्राणनाथ की बात तो समाप्त हो गयी, अब राजाराम का लेक्चर आरम्भ हुआ। पूर्णचन्द, रामकृष्ण, तुफैल, सादिक और हरिवशसिंह सुनने के लिये आ मौजूद हुए। राजाराम आत्मा की जटिल समस्या की घण्टे डेढ घण्टे तक विद्वतापूर्ण व्याख्या करते रहे।

इसी प्रकार एक दिन विज्ञान की बात चल रही थी। विषय यह था कि आज का मनुष्य सितारों से सम्बन्ध जोड रहा है। उसने दुनिया और उसके रूढिपरायण विचारों को एकदम बदलकर रख दिया है। राजाराम ने सुना तो फौरन कहा—

'हिन्दुस्तान में वे लोग बसते थे—और अब भी बसते है जो जमीन पर बैठे आसमान की बातें करते हैं। उन्हें न किसी दुरबीन की जरूरत है, न कोई यत्र की दरकार है। उनके दिमाग मे ही वह शक्ति है कि वे सिर्फ ध्यान लगाकर ही हरेक सितारे तक पहुँच सकते है। हम हिन्दुस्तानियो ने उन ईजादो को जन्म दिया कि योरपवाले उनका नाम सुनकर ही दग रह जाते है। जग से थोडे दिन पहले हिटलर ने सस्कृत के एक विद्वान् को चालीस लाख रुपये इसलिये भेजे थे, कि वे उसे यह खोज लगाकर बताये, कि लक्ष्मण ने राम की मदद को जाते वक्त सीता के गिर्द जो लकीर बनाई

थी उसमें कौन सा मसाला इस्तेमाल किया था ।' और फिर बडे मजे से गर्दन हिलाकर कहा—'पश्चिमी दिमाग यह समझने मे असमर्थ है, कि वह क्या लकीर थी, जिस पर से आदमी भी नही गुजर सकता था।'

एक विज्ञान ही क्या, ससार की प्रत्येक वस्तु का आरभ भारतवर्ष से हुआ है । दुनिया का प्रथम सोशलिस्ट परशुराम था, क्योकि उसने क्षत्रिय राजाओं के विरुद्ध लडाई लडकर वर्गयुद्ध का आरम्भ किया था। आज रूस की जिस लालसेना का इतना मान है, हिंदुस्तान में वह हनुमान ने हजारो वर्ष पहले तैयार की थी।

और फिर एक दिन फकीरचन्द ने अखबार मे कोई खबर पढ़कर राजाराम से कहा:—'कभी वे दिन थे जब हिन्दुओ और सिखों में आपस की शादियाँ होती थीं । अब सिख कहते है कि हमारा हिंदुओं से कोई सम्बन्ध ही नहीं। दस साल बाद देखना हिंदू और सिख भी मुसलमानो की तरह एक दूसरे को अछूत समझने लगेंगे।'

'लालाजी, आप कैसी बातें करते है । अब छूतछात के दिन गये। अब दुनिया आगे की तरफ जा रही है। मै दावे से कह सकता हूँ कि आनेवाले दस सालों मे हिंदू सिख और मुसलमानों की तो क्या, तमाम दुनिया के लोगों की आपस में शादियाँ हुआ करेगी ?'

'दुनिया भर की शादियो से तो वही नतीजा निकलेगा जो अब हमारे सामने है,' लालाजी ने दलील पेश की, 'जितने हिंदुस्तानियों ने अंग्रेज औरतों से शादियाँ की है, सबने धोखा खाय है। अंग्रेज औरत किसी तरह भी हिंदुस्तानी औरत की तरह पतिव्रता नही हो सकती!'

लालाजी को अपनी बात काटते देखकर राजाराम बहस के रग मे आ गया और लाल पीला होकर बोला—'छोड़ यार, कुछ पता न वास्ता, मुफ्त बातें बना रहा है! मै कम से कम बीस अंग्रेज औरतों को जानता हूँ जिन्होने हिंदुस्तानियो से शादी की है और जिन्होंने पतिभक्ति का वह सबूत दिया है कि दुनिया याद रखेगी। डाक्टर धर्मवीर की अंग्रेज बीबी से मेरी खुद की जान पहचान है। ऐसी पतिव्रता औरत है वह कि गोया चितौड की राख से पैदा हुई है! और फिर चमनलाल की बीवी को कौन नहीं जानता, ब्लाक बीत जाने के बावजूद सडको पर खडी पुकारा करती है—'चमन! चमन! चमन!'

फकिरचन्द ने बहस को लम्बा नहीं किया। वह जानता था कि राजाराम जब किसी बात पर अड जाये, तो उसे इधर उधर झुकाना हिमालय को हिलाने का प्रयत्न करना है। थोड़े दिन हुए राजाराम ने कहा था कि पिछले चन्द सालों में

लाहौर शहर ने कांग्रेस को पचास लाख रुपया जमा करके दिया है और सैकड़ों आदमी जेल भिजवाये हैं। यह इतनी बडी कुर्बानी है कि इसकी मिसाल दुनिया के इतिहास में नहीं मिलती। वह कह ही रहा था, कि पूर्णचन्द बोल उठा— 'पचास लाख तो कहाँ पचास हजार भी नहीं दिये।' राजाराम ने और कुछ कहने की अपेक्षा पचास लाख रुपये की मुकम्मल फेहरिस्त जो उसे जुबानी याद थी, पेश कर दी; और पूर्णचद को वह डॉट बतायी कि सारी उम्र याद रखेगा। वह बेचारा तो कल का नौजवान है, पंडित बदरीनाथ जैसे प्रसिद्ध और पुराने कांग्रेसी को राजाराम के सामने मैदान छोड़ना पडा था। एक दिन राजाराम की इच्छा के विरुद्ध बातों ही बातों में पडितजी ने कह दिया कि हमारा वर्तमान आन्दोलन असफल रहा है। इस पर राजाराम बरस पडा 'मुआफ करना पडितजी, आप यह बात जेल की तकलीफ से घबराकर कह रहे हैं। वरना हमारे आन्दोलन को वह सफलता प्राप्त हुई है कि दुनिया की तारीख मे मिसाल नहीं मिलती। खाली हाथ कौम ने लगातार छ महीने तोपो और बमों का मुकाबिला किया है ? और अंग्रेज फौज को हरा दिया है। बाहर जो राजपाट का थोडा बहुत सिलसिला नजर आता है वह अमरीकी फौज की मदद से कायम किया गया है। अब यहाँ अंग्रेज का राज नहीं, बर्तानिया और अमेरिका का साझे का एम्पायर है और वह जग के दिनों का खेल है।

पडितजी यह दलील सुनकर राजाराम का मुँह देखते रह गये। और निरुत्तर होकर अपनी बैरक को चले गये ? अगर वे कह जाते—'राजा-रामजी, आप दुरुस्त फरमाते हैं'—तो मामला यहीं खतम हो जाता। अब चूँकि पडितजी ने राजाराम को दुरुस्त स्वीकार नहीं किया था, इसलिये वह दूसरे दिन बाबूसिंह से कह रहा था—'यह पडित बदरीनाथ बडा एम० एल० ए० बना फिरता है ? असेम्बली में जाकर पिछली बेंचों पर बैठा रहता है। आजतक दो शब्द की तकरीर नहीं की, फिर चला है राजाराम से बहस करने कि हमारा यह आन्दोलन असफल रहा है। उसे यह पता नहीं कि राजाराम को कांग्रेस में काम करते चालीस साल हो गये।'

वाकई राजाराम को बीस साल का अनुभव प्राप्त है और इसके अलावा गुलिस्ताँ, बोस्ताँ, इशाये माधोराम और हरकरण की शिक्षासे राजनीतिक सम-स्याओं को जितना वह समझता है उतना समझना और किसी के बस की बात नहीं। गत जर्मन-युद्ध के बाद देश में इन्फ्लुएजा की जो बीमारी फैली थी, उसके बारे में राजाराम ने अब से पहले यह राय प्रकट की थी, कि यह कोई बुखार नहीं, राजनीतिक व्याधि है, जो अंग्रेजों ने हमारे बढ़ते हुए आन्दोलन को

रोकने के लिये हिन्दुस्तान के जंगलों में विषैली गैस छोडकर फैलाई है। इसी प्रकार कोयटे का भूचाल महात्मा गाधी के कथनानुसार लोगों के पापो का दण्ड नहीं, बल्कि राजाराम के कथनानुसार अंग्रेजो की कूटनीति थी, क्योंकि वहाँ के सराफों के पास कोहेनूर की तरह के लाखों हीरे थे और अंग्रेज कोयटे को नष्ट करके उन्हें प्राप्त करना चाहते थे। अगर ईश्वर पापो का दड देने के लिए भूचाल ला सकता है, तो हुकूमत उसे अपना सियासी मतलब निकालने के लिये क्यों इस्तेमाल नहीं कर सकती ? लोगो ने राजाराम की दूरदर्शिता और प्रखर बुद्धि की दाद उस वक्त दी थी, जब उसके कहे अनुसार सबने बगाल दुर्भिक्ष को राजनीतिक दुर्भिक्ष मान लिया था।

जिस समय अफगानिस्तान मे अमानुल्ला के विरुद्ध तूफान खडा हुआ, जिसके कारण उसे देश छोडकर जाना पडा, उस समय भी राजाराम ने सबसे पहले यह राय प्रकट की थी कि इस विद्रोह के पीछे अंग्रेजों का हाथ है। अगर अमानुल्ला का राज बना रहता, तो वह न सिर्फ अफगानिस्तान में अंग्रेजो के प्रभाव को खतम कर देता, बल्कि हिन्दुस्तान की आजादी की जग में हर तरह की सहायता करता ? यही वजह थी कि राजाराम उसके गम को अब तक नही भुला सका था और उसने इसी अभिप्राय से लाहौर के स्टेशन पर नादिर खॉ से भी मुलाकात की थी। नादिर खॉ ने उसे विश्वास दिलाते हुए कहा था—
'राजारामजी ! आप कैसी बात करते हैं ! मुझे वहॉ एक बार पॉव तो जमा लेने दो ! फिर देखना मेरा भी वही प्रोग्राम है, जो अमानुल्ला का था'

और राजाराम का ख्याल है कि अंग्रेज ने उसके पॉव वहॉ जमने ही नहीं दिये, वरना अफगान बच्चा कभी झूठ नहीं बोलता।

कुमार जेल में राजाराम का पडोसी है। शायद इसी कारण वह उसके स्वभाव को खूब समझता है। वह उसके साथ बहस में कभी नहीं पडता। पहले मीठी मीठी बातें करता है और फिर अपनी हरेक बात मनवा लेता है।

'राजारामजी, रूस की हुकूमत बहुत अच्छी है। हिन्दुस्तान में भी इस प्रकार की हुकूमत होनी चाहिए।' कुमार कहेगा।

'बिल्कुल, इसके बगैर चारा ही नहीं।' राजाराम उत्तर देगा।

'राजारामजी, हिटलर बडा बहादुर है, उसे जरूर फतह हासिल होगी।

'बिल्कुल, दुनिया की कोई ताकत उसे हरा नहीं सकती।'

'राजारामजी, फासिस्ट डिक्टेटरशिप के मुकाबले में लोकराज बहुत अच्छा है।'

'बिलकुल, लोकराज के बिना तहजीब की तरक्की ही नही हो सकती।'

सुननेवाले हँसते है कि राजाराम भी विचित्र व्यक्ति है। अभी तो वह हिटलर की विजय चाहता था, और दूसरे ही क्षण लोकराज का पक्ष ले लिया। लेकिन कुमार जानता है कि इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। वह हिटलर की विजय चाहता है, क्योकि हिटलर अंग्रेज के विरुद्ध लड रहा है। प्रत्येक मनुष्य जो अंग्रेज के विरुद्ध है, उसे चाहे उसका जीवन-आदर्श कुछ भी हो, राजाराम की हिमायत हासिल है। लोकराज-पक्ष वह इसलिए लेता है कि खुद कॉंग्रेस की नींव लोकराज पर स्थित है और अगर दुनिया मे लोकराज न रहे, तो वह लेक्चर किस तरह करे।

राजाराम का यह 'बिलकुल' इतना आम है कि अगर वह खुशी के रंग में हो, तो दिन को रात कहने पर भी आमाद[1] हो जाता है। लेकिन कुमार यह बात कई बार आजमा चुका है कि उसके दिल मे एक तार ऐसा भी है, जिससे यह बिलकुल का स्वर कभी नही निकलता। जब कभी उसे स्वर बदलना होता है वह इस तार को छेड देता है—

'राजारामजी, चर्चिल बडा नीतिमान है।'

'छोड यार, किसकी बात करता है।' राजाराम हाथ से फटकार भेजकर कहना शुरू करता है, 'चर्चिल को तो पता ही नही कि नीति चीज क्या है? वह तो पुरानी लायेड् नीति से काम निकालना चाहता है। मगर अब दुनिया उसकी चालों से वाकिफ़ हो चुकी है और वह रोता है कि मैं ब्रिटिश एम्पायर को दीवालिया करार देने के लिए प्राइमर मिनिस्टर नही बना।' इस पर वह व्यंगपूर्ण हँसी हँसकर फिर कहता है, 'कुमार, तू खुद सोच, अगर उसकी हुकूमत का दिवाला न पिट गया होता, तो वह यह बात कहता ही क्यो?'

परसों ही की बात है, कुमार ने अखबार पढकर उसे बताया, 'राजारामजी, तेहरान कान्फ्रेंस के बाद चर्चिल रास्ते में बीमार हो गया था। अब तन्दुरुस्त होकर लन्दन पहुँच गया है।'

'लन्दन पहुँचकर वह क्या करेगा?' राजाराम ने इत्मीनान से कहा, 'फौजों और हथियारों की कमान तो आइसनहावर के हाथ में है। उसकी वज़ारत अमेरिका के हाथ की कठपुतली है।'

इसी तरह कुछ महीने पहले कुमार ने यह खबर सुनायी थी कि लार्ड लिनलिथगो वापस इंगलैंड पहुँच गया है' तो राजाराम ने पूर्ण विश्वास के साथ कहा था—'वहाँ जरूर काली झण्डियों का मुजाहिरा और 'गो बैक' के नारे लगे होंगे।'

उस समय प्राणनाथ भी वहीं बैठा था, वह बोला—'क्यों जी, 'गो बैक' का मतलब तो यह हुआ कि वह फिर हिन्दुस्तान लौट आये।'

'ओहो, कैसी बच्चों की बातें करते हो। गो बैक का मतलब लौट आना नहीं, बेइज्जती करना और यह जताना है कि उसने हिन्दुस्तान के साथ अच्छा सलूक नहीं किया।'

बुद्धि की इस प्रखरता पर सब हँस पड़े थे।

उस दिन जब जेल अफसर दौरा करके गये राजाराम नल पर बैठा साबुन से मल मलकर हाथ धो रहा था, तो कुमार ने पूछा—

'क्यों जी, क्या लग गया हाथों में जो इस मुस्तैदी से धोये जा रहे हैं?'

'मुझे तो जब कभी इन अफसरों से हाथ मिलाने का मौका मिलता है, तब बाद में इसी तरह मल मलकर धोता हूँ।'

'ऐसा क्या लग जाता है हाथों को?'

'तुम नहीं जानते कुमार, ये लोग इस हुकूमत के कल-पुर्जे हैं, जो दिन-रात बेगुनाहों का खून बहाती है। इनके हाथ भी इस खून से रँगे रहते हैं। मै अगर इस तरह हाथ न धोऊँ, तो उस खून का असर किस तरह दूर हो?'

निस्सदेह राजाराम हिन्दुस्तान को अग्रेजो की गुलामी से आजाद देखना चाहता है। वह जो बात करता है इस आज़ादी के विचार से करता है और यह बात सुनाने के लिए अवसर ढूँढता रहता है। पजाब मे अप्रैल का पहला हफ्ता हर साल जालयॉवाला बाग के शहीदो की याद के तौर पर मनाया जाता है। आपस के मतभेद के कारण नजरबंदों की निर्वासित प्रबन्ध कमेटी ने यह सप्ताह नहीं मनाया। राजाराम झुंझला रहा था कि जब यह कमेटी जलसा तक नहीं कर सकती, तो इसे क्यों बनाया गया है। उसे नौजवानों को सन्देश देना था और वह सन्देश जो विशेष अवसर पर दिया जाता है, अधिक से अधिक प्रभाव उत्पन्न करता है। इसके बाद बहुत से अवसर आये थे, लेकिन वे धार्मिक उत्सव थे। पर राजाराम जानता था कि एक धार्मिक उत्सव को भी किस प्रकार राजनीतिक रग दिया जा सकता है। उसने शिवरात्रि के दिन स्वामी दयानन्द पर बोलते हुए उसे सियासी स्वामी और गुरूपर्व के दिन गुरू नानक को सियासी गुरू सिद्ध किया था, और उनके जरिये आजादी का सदेश लोगों तक पहुँचाया था।

राजाराम नौजवानों को आजादी का सदेश ही नहीं देता, बल्कि जो नौजवान आज़ादी के लिए तकलीफ उठाते है, उनकी जी–जान से कद्र भी करता है। सादिक जब रिहा होकर जाने लगा, तो राजाराम ने बधाई देते हुए कहा था—

'ऐ बहादुर नौजवान, तूने देशकी आजादीके लिए जो कुर्बानी की है, उसकी कद्र न सिर्फ हमारे दिलमें बल्कि तुम्हारे शहर, तुम्हारे जिले, सारे पंजाब, सारे हिन्दुस्तान और तमाम दुनियाके दिलमें है। तूने अपना, अपने माँ बापका और अपनी कौमका सर ऊँचा किया है। मै जानता हूँ कि जब तक देश आजाद नहीं होगा, तू इसी तरह कुर्बानी करता रहेगा। आखिर तू कुर्बानी क्यों न करे ?–तेरे ख्यालात बेहतर, तेरे जजबात बेहतर, तेरे हालात बेहतर, और फिर तेरा आना मुबारिक, तेरा जाना मुबारिक। तुझसे हमेशा ऐसी ही उम्मीद है।'

दरअसल कुर्बानीकी कद्र वही जानता है जो खुद कुर्बानी कर सकता है। सब जानते हैं कि लगातार जेल जानेके अलावा राजारामने १६३४ में अपनी कमाईका तमाम रुपया महात्मा गाँधीकी भेट कर दिया था। और जब वजारते बन रही थी, राजाराम सीमाप्रातमें यह प्रण लेकर गया था कि जब तक वहाँ कांग्रेस वजारत न बन जाये मैं वापस पंजाब नहीं आऊँगा। वहाँ पहुँचनेके चार महीने बाद जब वहाँ काँग्रेस वजारत कायम हुई तो राजाराम पेशावर जेलमें था। वह बड़े गर्व के साथ कहा करता है कि काँग्रेस वजारत ने काम सँभालते ही पहले उसे रिहा किया। उस समय रातके बारह बजे थे। दुनियाकी तारीखमें यह पहली घटना है कि किसी कैदीको रातके बारह बजे जेलसे छोड़ा गया हो।

राजारामको यह भी गौरव प्राप्त है कि लाहौरके लोगोंने हजारों रुपये खर्च करके उसे दो बार म्यूनिस्पल कमिश्नर निर्वाचित किया। लाहौरमें जितनी मान्यता राजारामकी हुई, उतनी शायद ही किसी और पब्लिक लीडरकी हुई हो। जो लोग मोरी दरवाजेके बाहर हजारोंकी तादादमें भाषण सुनने आते रहे हैं, राजारामके दिलमें उनकी श्रद्धाके लिए समानपूर्ण स्थान है। और वह अवकाशके समय उस लेक्चरका मजमून सोचा करता है जो उसे रिहाईके बाद इन श्रद्धालुओके सामने करना है।

एक बार सालिगरामने एतराज किया था कि जब सब लोग बोलना जानते हैं तो क्या कारण है कि एक ही आदमी बार बार बोलता रहे। राजारामने यह बात सुनी तो चकित रह गया। लेकिन बड़े प्रेमसे कहा—'सालिगरामजी, आप खफा न हों। मै आजके बाद कभी न बोलनेका प्रण करता हूँ। और जो दूसरे लोग बोलते हैं उन्हें भी मना कर दूँगा। आप खुद बोलें और जिस किसी आदमीको आप बुलवाना चाहते हैं वह बोला करे। पर एक बात याद रखना कि लेक्चर करना हरेक आदमी के बसका रोग नहीं। दो मिनट बोलनेसे जबान सूख जाती है और मुँह टकासा निकल आता है। पंजाब भरकी तीन करोड़ आबादीमें दो ढाई सौ आदमी मुश्किलसे बोल सकते हैं और उनमें भी हम सिर्फ पाँच सात आदमी ऐसे हैं जो दो तीन घंटे

बिना झिझकने और मजमूनपर पाबंद रहते हुए बोल सकते हैं। लेकिन मै मानता हूँ कि और लोगोंको भी बोलना सीखना चाहिए। आप बोला करें। मैं कभी नहीं बोलूँगा।'

लेकिन इस प्रणका मूल्य ही क्या था। जब वह ईमानदारीमे महसूस करता है कि बोलनेका कोई भी अवसर खो देना जातिको ऐसा नुकसान पहुँचाना है जिसकी कभी पूर्ति ही नहीं हो सकती। फिर सालिगराम ऐसे सनकी आदमीसे नाराज होकर वह यह नुकसान किस प्रकार गवारा कर सकता था। हर दफा बोलनेके बावजूद समय इतना थोड़ा होता था कि लेक्चरका अन्तिम भाग मनमें ही रह जाता है और वह बादमें बाबूसिंह या कुमारको सुनाना पड़ता है। उसका वश चले तो अपने विचारोंको अशोककी तरह शिलाओंपर खुदवाकर हिन्दुस्तानके कोने कोनेमें लगवा दे।

इन लेक्चरो और विचारोंके सम्बन्धमे राजारामकी अपनी क्या राय है वह उस बातचीतसे प्रकट है जो गत सितम्बरकी २२ तारीखको कुमारकी चारपाई पर बैठे हुए उसके और बाबूसिंहके दर्म्यान हुई थी।

'बाबूसिंह!' राजाराम कह रहा था, 'बहुतसे आदमियोंको बोलनेका मरज होता है और वे फिजूल बोलते हैं। हमारी कॉंग्रेसमें भी बातूनी आदमी मौजूद हैं। वे सारा सारा दिन बोलते हैं और समझते हैं कि हमारी बातोंका बड़ा असर होता है।

'ऐसे एक आदमीको तो मै भी जानता हूँ।' कुमारने कहा।

'किसे?' राजारामने दर्याफ्त किया।

'मुआफ करना, मै यह नहीं बताऊँगा।' कुमारने उत्तर दिया।

'देखते नहीं, इस शैतानकी मतलब आप ही से है।' बाबूसिंहने उसे छेड़नेकी नीयतसे कहा। लेकिन राजारामने निहायत इत्मीनान और आत्मविश्वासके साथ प्रतिवाद किया—'पागल, मुझे वह किस तरह कह सकता है, जब वह अच्छी तरह जानता है कि मेरी हरेक बात माने रखती है और मैं फिजूल कभी नहीं बोलता।'

निस्सन्देह उसे आज तक किसीने यह नहीं कहा कि राजारामजी आप फिजूल बोलते हैं। बल्कि एक बार प्राणनाथने इन शब्दोंमें श्रद्धांजलि पेश की थी—जरनैल साहब, जब आप मर जायँगे तो हम आपकी समाधिपर लिखेंगे—दुनियामे एक खब्ती कम और परलोकमें एक देशभक्त ज्यादा।' इस पर प्रेमचन्दने मजाक उड़ाया, 'लो साहब आपको खब्ती कह दिया, खब्ती!' और वह हँसने लगा। 'हाँ, मै खब्ती हूँ।' राजारामने बड़ी शानके साथ गर्दन हिलाते हुए जवाब दिया, 'तुम कलके छोकरे क्या जानो। जिस आदमीको एक न एक किस्मका खब्त नहीं, वह दुनियामे जैसा आया वैसा न आया।' और फिर छाती तानकर कहा, 'मै खुश हूँ कि मुझे खब्ती होनेका फख्र हासिल है।'

वह इतना खुश था कि इसी कारण सप्ताह भर प्राणकी तारीफ करता रहा। अगर उसे खब्त न हो तो लेक्चर करनेके लिए वह इतना उतावला क्यों हो। लेक्चरोंसे न पेट भरता है और न उम्र बढ़ती है। फिर भी जब पिछली गर्मियोंमें दो महीने तक बोलनेका कोई अवसर न बना था तो उसने नौजवानोंपर किसी न किसी तरह लेक्चर करनेकी प्रबल इच्छा प्रकट की थी। और आखिर कुमारकी कोशिशसे 'इंटरनैशनल लेक्चरिंग सोसाइटी' की स्टेजपर मियांवाली जेलकी चारदीवारी में वह लेक्चर करने खड़ा हुआ। इससे पहले कुमारने बता दिया था कि इस नयी सोसायटीका उद्देश्य यह है कि लोगोंको अन्तरराष्ट्रीय स्थितिसे परिचित किया जाय। लेकिन राजारामने इस भ्रमको आरम्भ ही में तोड़ दिया। वह बोला— हिन्दुस्तान राजाराम और राजाराम हिन्दुस्तान है और राजारामके लिए हिन्दुस्तानकी सियासत ही...'

लोगोंने दो घंटों तक आज़ादीका सन्देश सुना। दस पन्द्रह मिनटके बाद कुछ लोग उठकर चले जाते थे, और उनकी जगह नए आ बैठते थे। ऐसा मालूम होता था कि राजाराम एक ही विचार को बार बार दोहरा रहा है। दरअसल हरेक उच्च और उत्कृष्ट विचारको बार बार दोहरानेकी जरूरत पड़ती है। मनुष्यके दिमागकी बनावट ऐसी है कि उसे नया विचार स्वीकार करना पत्थर में कील ठोकने के बराबर है, जो धीरे धीरे और सावधानी से ही ठोंकी जा सकती है। इस बात को लेनिन ने भी महसूस किया है और उसने अपने विचारों को अपनी पुस्तकों में बार बार दोहराया है

'इंटरनैशनल लेक्चरिंग सोसाइटी' का इसके बाद कोई जलसा नहीं हुआ। इसका कारण प्रबन्धकर्ताओंकी सुस्ती और ढीलापन था, वरना राजाराम तो कई बार कह चुका था कि जलसा फिर हो। जब वह इधरसे निराश हो गया तो उसने अपने विचार प्रगट करनेकी नई स्कीम सोचना शुरू की। आखिर एक दिन नजर-बन्दों में मशहूर हो गया कि राजारामने राष्ट्रपति आजाद को खत लिखा है। राजाराम पूछने पर पहले खत का मजमून सुनाता और फिर खत लिखने के उद्देश्य की व्याख्या करता। बाबूसिंह से तो खत लिखनेसे पहले ही सारी स्कीम बता दी गयी थी। इसके बाद राजारामका विश्वासपात्र कुमार था। उसे पास बैठाकर पहले तो खतका मजमून सुनाया— हम मियांवाली जेलके सब नजरबन्द आपकी सेहतके बारेमें बहुत फिक्रमन्द हैं। इत्तला भेजनेकी तकलीफ करें क्योंकि आपकी जिन्दगी कौमकी जिन्दगी है। ..

खत सुनाकर वह बोला—देख कुमार, मेरे इस खतसे हुकूमत नंगी होकर रह जायगी। उन्हें जबसे नजरबन्द किया है कोई भी खबर नहीं निकलती थी। अगर मेरा यह खत रोक लिया गया तो हमें बाहर जाकर कहनेका मौका मिलेगा कि तहजीब और लोकराजके लिये लड़नेवाली इस हुकूमतने हमारे खत भी एक

दूसरेके पास नहीं पहुँचने दिये। उनतक न सही, मेरा खत पहले गवर्नर पंजाबके पास जायेगा! वह पढ़ेगा तो उसकी छाती पर साँप लोटेगा कि राजाराम अभीतक जिन्दा है और जेलमें बंद होते हुए भी हमें सुखकी साँस नहीं लेने देता। वह वायसरायके पास भेजेगा तो उसे मालूम होगा कि हम चालीस करोड़ हिन्दुस्तानियोंके राष्ट्रपतिको जेलमें डालकर वह भी आरामसे नहीं बैठ सकता। उनके नामलेवा जिन्दा हैं और जब भी चाहे तूफान खड़ा कर सकते हैं। यह कहकर राजाराम मुस्कराया और दायाँ हाथ कुमारकी ओर बढ़ाकर कहा, 'ला फेंक हाथ, और बात दे कि राजारामका दिमाग कितनी दूरकी सोचता है!'

'वाकई साहब, आप जैसी बात तो पंजाबमें दूसरा लीडर सोच ही नहीं सकता। आपके सामने सब बच्चे हैं बच्चे।'

राजाराम मुस्कराया, गर्वान्वित मुस्कराहट, और फिर बोला—'कुमार तुम्हारे और हमारे दर्म्यान तो कोई बात छिपी नहीं। वर्किङ्ग कमेटीके मेम्बर भी मौजूद हैं और असेम्बलीके भी। राष्ट्रपतिको खत लिखना उनका काम था न कि राजाराम का। दरअसल सब दिलमें डरते हैं, इसलिये चूँ तक नहीं करते।'

'लेकिन साहब, आपको तो डर छू तक नहीं गया।'

'जरा सोच कि लोग मुझे जर्नल वैसे तो नहीं कहते।' राजाराम एक बार फिर बच्चोंकेसे निष्कपट भावसे मुस्कराया। जैसे जैसे मुस्कराहट फैलती जाती थी चेहरे की झुर्रियाँ मिटती जाती थी। जिस किसीने पहले पहल बच्चे और बूढ़ेको एक कहा है उसने जरूर किसी बूढ़े आदमीको ऐसी ही आनन्दकी मुद्रामें देखा होगा, जो अब राजारामके चेहरे पर अंकित थे! लेकिन यह मुद्रा आनन्दकी पराकाष्ठामें ही दीख पड़ती है।

राजाराम नेशनलिस्ट था लेकिन उसने कभी कम्यूनिस्टोंसे झगड़ा नहीं खड़ा किया। सिर्फ कुमारसे कहा करता था कि अगर कम्यूनिस्ट साथ देते तो हमारा यह आन्दोलन इससे भी अधिक सफल होता।

'फिर क्या होता राजारामजी, सौ, दो सौ आदमी और जेलोंमें आ जाते!' कुमार कहता 'ओहो!' राजाराम जवाब देता, 'और आदमी आनेकी तो बात ही नहीं। यह तो एक हवा थी जो उन्होंने जनताकी जंगका नारा लगाकर बिगाड़ दी थी।'

इसके बाद लेक्चर शुरू होता। कुमारको बताया जाता कि कम्यूनिज्म विदेशी चीज है जो हिन्दुस्तानमें किसी सूरतमें भी फल फूल नहीं सकती। लेकिन आश्चर्यकी बात तो यह है कि राजारामके इतना निकट रहने और लेक्चर सुननेके बावजूद डेढ़ दो माससे कुमार भी कम्यूनिस्ट बन गया है। राजाराम उसके साथ

अब भी उसी तरह बोलता है। फर्क सिर्फ यह है कि कम्यूनिस्टोंके बारेमें पहले जो बातें कुमारसे होती थीं वे अब बाबूसिंहसे होने लगी हैं।

हर नौजवानके कम्यूनिस्ट बन जाने पर राजारामको दुख होता है। लेकिन कुमारकी तब्दीली तो एक विशेष आघात था। जब कभी वह अकेला बैठकर सोचता उसका मन कटुता और विषादसे भर जाता। कुमार जो उसके इतने निकट था दूर जाता दिखाई देता। इस पर उसके मनमें क्लेश भी उपजता और कुमारके प्रति सहानुभूति भी। इस घटनाके छः सात दिन बाद एक दिन जलसा हुआ। जब राजाराम लेक्चर करने खड़ा हुआ तो उसने कहना शुरू किया—'हम लोग आजादीका प्रण लेकर जेलमें आते हैं। अन्दर आकर उस प्रणको भूल जाते हैं और बहाना यह करते हैं कि हमारा ज्ञान बढ़ गया। समझमें नहीं आता कि यह नौजवान किस तरह भटक जाते हैं। राजाराम भी तो नौजवान था-और उसका दिल अब भी नौजवान है। लेकिन वह कभी नहीं भटकता। वह उस वक्तसे कांग्रेस में आया है जब १६०५ में देशके आभूषण गोपालकृष्ण गोखले लाहौर आये थे और एक कविने कविता ......'

विक्टरी डे

सुरेश जल्दी जल्दी कदम उठाता हुआ आगे बढ़ा। जिला कचेहरी, गवर्नमेंट कालेज और टाउनहाल बिजलीसे जगमगा रहे थे। रंग बिरंगे बल्ब कतार अन्दर कतार किस करीनेसे लगाये गये थे और वे एक शान और प्रतिभाके साथ रातके अन्धकार को आँखे दिखा रहे थे। उनके तीव्र प्रकाशसे घबराकर वृक्षोंके साये पत्तोंमें जा छिपे थे। उजाला वहाँ भी उनकी पीछा कर रहा था। प्रकाश--सुन्दर प्रकाश भूमि का लिबास बन चुका था। इस प्रकाशसे सुरेशका मन भी जगमगा उठा था। वह एक कोमल कल्पनासे प्रभावित आगे बढ़ रहा था। उसकी अर्धचेतनामें कोई उपमा—कोई अनुपम विचार जन्म ले रहा था। वह आप ही आप बोल उठा—'आदि प्रकाशके अमर दूत नक्षत्र धरतीकी हीनताको महानतामें तबदील करने दुनियाकी गोदमें उतर आये हैं।'

जितना वह सोचता था उतना ही उसका मन प्रकाशसे प्रदीप्त होता जा रहा था। पोलेण्ड, यूगोस्लाविया, ईरान, यूनान, विद्रोह . परिवर्तन, नयी हुकूमतें, नया जमाना—स्वतन्त्रता, स्वाधीनता, ऐश्वर्य। सुरेशके मस्तिष्कमें अनेक बल्ब जगमगा उठे और वह उज्ज्वल वातावरणमें स्पष्ट देख सकता था कि साम्राज्यवादकी मनहूस छाया एक दूरस्थ द्वीपकी ओर भागी जा रही है। और इंकलाब वहाँ भी उसका पीछा कर रहा है।

अब वह सड़क छोड़कर गोलबागकी एक रविश पर चल रहा था। बच्चे-बूढ़े, लड़के-लड़कियाँ, और पति पत्नीके जोड़े सैर करते इधर-उधर घूम रहे थे। हरी हरी

घास पाँवके नीचे दबती जा रही थी और उसकी नहोंमें छिपा हुआ अन्धकार पाताल में धँसता जा रहा था. लेकिन वे इस बातसे बेखबर घूम रहे थे। सिर्फ घूम रहे थे। कहीं कहीं बातें भी हो रही थीं। स्कूलकी बातें कालेजकी बातें, घरेलू झगड़ो और आमदनी-खर्चकी और सिनेमाकी बातें। अक्सर लोग वातावरणसे उदासीन मालूम होते थे। टाउनहालकी पेशानीपर (V) का अक्षर बना था। कितने ही लोग इसका मतलब नहीं समझते थे और जो समझ सकते थे वे भी कोई स्पन्दन महसूस नहीं करते थे। उन्होंने रंग बिरंगेके इन बल्बोंको देखा जरूर था। लेकिन उनके लिए यह प्रकाश अन्धकारसे भी अधिक भयानक था। अगर उनका बस चलता तो वे यह बल्ब जो उनकी विवशताका मजाक उड़ा रहे थे और जो एक समुन्दर पार बैठे अजनबीके लिए जल रहे थे, एकदम तोड़फोड़ देते। उनके उदास चेहरे और जजबातसे सूनी आँखें देखकर सुरेशके मनमें आया कि वह चिल्ला-चिल्लाकर उन्हें अपने गिर्द जमा करे और कहे—'आज जीतका दिन है। विजयोत्सव है। फासिस्टोंकी हार हुई है। खुशी मनाओ।'

एक जोड़ा चहलकदमी करता हुआ उसके करीबसे गुजरा। पति पढ़ालिखा था। औरत अपढ़ मालूम होती थी। पति कह रहा था—'आज हमारे नन्हेकी वर्षगाँठ है, इसीलिए यह सब कुछ है प्यारी।'

औरत गद्‌गद्‌ हो उठी। और उसके चेहरेपर हर्षकी हल्की-सी लहर दौड़ी जो दूसरे ही क्षण मिट गई क्योंकि उससे इतने बड़े प्रकाशको अपने व्यक्तित्वके तंग दायरेमें सीमित करते न बन पड़ा।

'आप बताते तो नहीं। मज़ाक करते हैं।' उसने कंधे हिलाकर एतराज किया।

'अंग्रेजने जापानको हरा दिया। यह उसीकी खुशी मनाई जा रही है।'

'अच्छा जी, अंग्रेज जीत गया?'

'हाँ, जीत गया।'

और परे एक नौजवान अपने साथीसे कह रहा था—'समय-समयकी बात है। कल सिङ्गापुरसे भागे थे मार खाकर। आज खुशी मना रहे हैं।'

सुरेशने रुकना मुनासिब न समझा। वह उस तरफको आगे बढ़ा जिधर बैठने के लिए बेंचें रखी हैं। एक बेंचपर कोई महाशयजी दूसरेसे कह रहे थे—'अर्जुनके अग्निबाणका ही नाम ऐटम बम है। पर उस समय वह नगरोंपर नहीं, युद्ध क्षेत्रमें फेंका जाता था।'

'प्राचीन सभ्यताका क्या मुकाबला?' दूसरे महाशयने भारतीयोंकी योग्यताका बखान और भी ऊँची आवाजमें किया, 'उस समय तो नाभिसे नीचे शस्त्र मारना पाप था।'

बाईं ओर सड़क थी। परे फिर बाग था। इसलिए वृक्ष ही वृक्ष थे। कहीं रोशनी नहीं थी। सामने हर रोजकी तरह खम्भेके, एकमात्र बल्बका प्रकाश था। बेंचोंके बीचमें लाजपतरायका बुत खड़ा था। उसकी छाया इन महाशय जनोके चेहरोंपर पड़ रही थी। सुरेशने सोचा, मैं कौन-कौन सा दिया अपने दियेसे जलाऊँ? यहाँ तो हर घरमें अँधेरा है। उसने एक दृष्टि सामनेकी ओर डाली। तमाम माल रोड प्रकाशसे जगमगा रही थी। बल्बोंकी कभी खत्म न होनेवाली पंक्तियाँ दूर तक चली गई थी। जहाँ तक नजर पड़ती थी उजाला ही उजाला फैला था। सुरेश उन्हें वहीं अँधेरेमें बैठा छोड़कर स्वयं प्रकाशकी ओर बढ़ा। वह उनके वे चेहरे भी न देख सका जो हीरोशिमा और नागासाकीके विध्वंसके गममें घुले जा रहे थे।

बागसे निकलते ही सुरेशकी निगाह भंगियोंकी तोपपर पड़ी। कभी इस तोपने बड़े-बड़े मार्के सर किये थे। लेकिन अब बेकार पड़ी थी। उसपर बच्चे चढ़े बैठे थे और खेल रहे थे। सुरेशके दिमागमे इतिहासके पन्ने उलटने लगे। सदियोंका जमाना क्षण भरमें दृष्टिके सामने घूम गया। उत्पत्ति, पत्थर, धात, गुलामी, सामन्तशाही, तीर तलवार, बारूद तोप और फिर यह ऐटम बम। क्या समयकी रफ्तार इसे भी बेकार न बना देगी।

'मुबारक, कामरेड सुरेश, आपकी रोशनी मुबारक।'

'और आपको नहीं?'

'नहीं, हमारे लिये नहीं। हमारे लिए तो वही अँधेरा है।'

'क्या आप चीनकी आजादीसे खुश नहीं?'

'हमें चीनसे क्या मतलब? हमें तो हिन्दुस्तानकी बात देखनी है। और फिर कौन पूछता है चीन बेचारे को? आपके रूसको भी कोई नहीं पूछता। अब अमेरिका और बरतानियाके पास ऐटम बम है।' प्रीतिलाल मुस्करा कर और अपनी दानिश्तमे सुरेशके जज़्बातपर ऐटम बम गिराकर कर आगे चला गया।

जिस तरह एक गम्भीर पुरुष नादान बच्चेका उछाला हुआ गेंद शरीरके साथ छू जानेसे क्रोध नहीं करता बल्कि इस बातपर विचार किये बिना ही चलता रहता है उसी तरह सुरेश भी चल पड़ा। लेकिन उसने फुटपाथपर कदम रखा ही था कि सामनेसे पृथ्वीनाथ वर्मा आ गये। वे खूब तपाकसे मिले। हाथ मिलाया और बगलगीर हुए और फिर कहा—

'यार, तुम्हारे रूसने धोखा किया।'

'किससे?'

'जापानसे।''

'वह क्यों?'

'जब जापानने दोस्ती निबाही थी तो उसे भी निबाहनी चाहिए थी या नहीं।'

'जरूर।'

'जब हिटलर रूसियोको मारता स्टालिनग्राड तक पहुँच गया था, उस वक्त जापान भी इधरसे हमला कर देता तो कहिए रूसकी क्या दशा होती ?"

'लेकिन दोस्ती जो थी।'

दोस्ती वोस्ती क्या होती है सियासत में। मैं तो यह समझता हूँ कि जहा जर्मनीसे गलती हुई कि उसने रूसपर हमला किया वहा जापानसे यह गलती हुई कि वह बैठा रहा।'

'मिस्टर वर्मा! आपकी इस बातसे तो मै सहमत नहीं। पर जर्मनी और जापानकी एक गलती मैं भी मानता हूँ।"

"वह क्या?"

"वह यह है कि उन्होंने अपनी जंगी कौसिलोंमे हिन्दुस्तानी सलाहकार नहीं रखे।'

वर्मा साहब जोरसे हँसे। सुरेश भी हँस पडा और हँस लेनेके बाद वर्मासाहेब ने कहा—'लेकिन साहेब रूससे तो छिड़ेगी।'

'बिल्कुल।'

वर्मा साहेब एक बार सत्याग्रहमें कैद काट आये थे। जंगमें अंग्रेजका मदद देनेके सख्त खिलाफ थे। लेकिन उन्होंने लोहेका एक कारखाना खोल रहा था छोटी-छोटी कीले, पेच और पुर्जे मिलिटरीको ठेकेपर सप्लाई करते थे। इसलिए जापान के साथ धोखेकी चर्चा वास्तवमें अपना कारोबार बन्द होनेका अदेशा था। सुरेश उनके साथ एक ही मकानमे किराये पर रह चुका था। खूब जानता था कि वर्मा साहेब एक बात कहकर दोबारा आप ही उसका प्रतिवाद कर देते हैं। इसलिए उनके साथ बहसमें उलझना व्यर्थ था।

लेकिन एक वर्मा साहेब ही क्यो अकसर आदमी इसी तरह सोचते हैं। उस दिन शामको जब वह अखबारके दफ्तरसे लौटा और उसने अपने पड़ोसियों और मिलने जुलनेवालोसे सहर्ष बतलाया कि जापानने हथियार डाल दिया तो किसीके चेहरे पर प्रसन्नता नहीं आई। बल्कि कई एक ने अफसोससे कहा–'तो बस फिर अंग्रेज तो रह गया यहीं।'

किसीको युद्ध समाप्त होनेका विश्वास नहीं आता था। और शायद चिरकाल तक नहीं आयेगा। हाँ यह समाचार सुनकर बलराम हलवाई जरूर खुश हुआ था। उसने मुस्कराकर पूछा था—'तो बाबूजी, अब यह कण्ट्रोल टूट जायेगा और हमें खाँड आम मिलने लगेगी ?'

लेकिन यह भी कोई प्रसन्नता थी। सुरेशने जीतनेवालोंकी अपार प्रसन्नताके दृश्य देखे थे। कालेजमें जब उनकी हाकीकी टीम मैच जीत लेती थी तो हाकियाँ टोपियाँ पगड़ियाँ हवामें उछला करती थीं। लेकिन पगड़ियाँ उसी समय उछलती हैं, जब पहिले मन प्रसन्नतासे उछलते हों।

सुरेशने जब क्रीट पर जापानकी पराजयकी खबर पढ़ी थी तो उसका मन वाकई प्रसन्नतासे नाच उठा था, हाथ फूल गये थे और उसके लिए अनुवाद करना मुश्किल हो गया था। दफ्तरके हरेक आदमी, कातिब और चपरासी तकको यह खबर सुनाई थी। उसकी निगाह बार बार दीवार पर टँगे घंटे पर पड़ती थी कि दफ्तरका वक्त खत्म हो और वह जाकर यह शुभ समाचार सुनाये। अगर कहीं से फोन आता तो वह असल बात का जवाब देने से पहले यह खबर सुनाता। और फिर दस मिनट पहले ही वह दफ्तर से निकला। हवा पर उड़ता हुआ घर की ओर चला। सड़क पर चलते लोगों को वह बड़े ही ध्यानसे देख रहा था। जब कोई परिचित चेहरा नजर आता तो उसे जंग खत्म होने की खबर यों सुनाता कि वह सिर्फ एक आदमी को नहीं, पाससे गुजरनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को सुनायी दे जाती। लेकिन गोपाल, नजीर, देव और एसे ही समविचार रखनेवाले चन्द मित्रों के अतिरिक्त कोई भी उसके जजबातकी पुकार से प्रतिध्वनित नहीं हुआ।

वही दशा आज थी। इस प्रकाश के साथ उसकी जो उमंगे गुँथी हुई थी वही वह दूसरोंमें उभारना चाहता था। पर वह यह बात समझनेमें असफल था कि किस दूर-दर्शी यन्त्र द्वारा उन्हें भविष्यका बोध कराये! जो लोग फासिज्म और इम्पीरियलिज्म के इतिहास को नहीं समझते उनके लिए जनसाधारण की बढ़ती हुई शक्तिका अनुमान लगाना मुमकिन नहीं। जो निगाहें सिगनल हो जाने के बाद भी इंजनके प्रकाश का चिन्तन नहीं करती उनके लिए उषाकाल की लालिमा की गोद में छिपे हुए सूर्य को देखना सम्भव नहीं।

बहुतसे लोग सड़क पर चल रहे थे। उनमेंसे अकसर रोशनी देखने आये थे। उनमें बातें भी होती थीं। लेकिन यह बातें वहीबातें थीं जिन्हें वह सुनते सुनते तंग आ चुका था। वह चाहता था कि गोपाल, नजीर, देव अथवा कोई और हमख्याल आदमी मिल जाये जिसके सामने वह दिलकी गांठ खोल सके और जिसके साथ मिलकर वह इस प्रकाशका वास्तविक आनन्द ले सके। लेकिन सिर्फ गोपाल नजीर और देव ही तो संसार भरकी आशाओंको पूर्ण करने के लिये काफी नहीं। यह सब लोग भी क्यों भविष्य क्रांतिकी कल्पना नहीं करते? इनकी कोशिशें उसकी रफ्तार तेज करनेमें क्यों खर्च नहीं होती? यह विचार सुरेश के लिये परेशानीका कारण बन रहे थे। लेकिन परेशान होनेका नहीं खुशी मनानेका समय था। आनन्दोत्सव

था। वह होठोंसे सीटी बजाने लगा।

अब वह वाई० एम० सी० ए० के निकट पहुँच गया था। सामने बड़े डाक-खाने, इम्पीरियल बैंक और तारघरकी रोशनी नजर आ रही थी। वह केवल इस प्रकाशको देखकर पिंड छुड़ाना चाहता था कि दायी ओरसे एक आदमी बढता हुआ उसके करीब आया और पूछा—"बाबूजी, भर्तीका दफ्तर किधर है ?"

'क्या करोगे वहां ?

'भर्ती होना है।"

'जंग तो ख़त्म हो गई।'

'खत्म हो गई।'

'हां।'

'पर बाबूजी, आटा तो सस्ता नहीं हुआ।'—एक और आदमीने पूछा।

सुरेशने देखा कि सवाल करनेवालेका शरीर इकहरा और सूखा, कपड़े मैले और चेहरे पर भूख, कभी खत्म न होनेवाली भूखके निशान हैं।

'क्या करते हो ?'

बैंकमें चपरासी हूं बाबूजी! मँहगाई मिलाकर कुल बत्तीस रुपये मिलते हैं। तीन बच्चे हैं, लुगाई है, और आप हूं। आटा बहुत मँहगा है। गुजारा नहीं चलता।'

'हूं!' सुरेश ने कहा और वह आगे चल दिया। पर यह 'हूं' नही एक दुःखप्रद टीस थी जो उसके दिलसे उठकर होठोंपर आ गई थी। उसकी दृष्टि सड़क के एक ओर लगे बोर्ड पर पड़ी जो शायद जंग शुरू होते ही लगाया गया था और अबतक वैसे ही लगा हुआ था। युद्ध समाप्त हो चुका था पर यह बोर्ड लोगोंको भर्ती होनेके लिये बुला रहा था। उस पर एक सिपाहीका चित्र बना था। जिसकी तीन उंगलियां ऊपर उठी थी और वह कह रहा था, 'तीन बातें याद रखो:—

अच्छी तनख़्वाह

अच्छी खूराक

और कपड़ा मुफ्त

कितने सुन्दर शब्द हैं। मनमें उतर जाते हैं। आत्मा में पैठे जाते हैं। जबतक पेट खाली हो, न फासिज़मसे लड़ा जाता है और नहीं स्वदेश रक्षा हो सकती है। फिर जहा हर चण आटा खरीदनेकी चिंता लगी हो, लोग रात दिन चौबीस घण्टे भर्ती होनेके लिये मारे मारे फिरते हों वहा पेटसे अपील काफी है।

आत्माको छूनेकी जरूरत ही नहीं। शायद वह जाग उठे। और सजग आत्माको गुलामीसे नफरत होती है।—यह सोचकर सुरेशका मन घृणासे भर गया। उसके भीतर तूफान उठने लगा। क्रोधसे जलती हुई आखे बोर्ड पर डाली गोया वह उसे एकदम जला देना चाहता है। इस बोर्डका अस्तित्व उसे अपने आदर्शका व्यंग मालूम होता था।

'बाबूजी आज क्या है? एक आदमी जिसकी मैली कमीजके कन्धे फटे हुए थे, पूछ रहा था।

'विक्टरी डे।'—सुरेशने उत्तर दिया और चुप हो गया। वह आदमी बेचारा हैरान खड़ा उसके मुंहकी ओर ताकता रहा! उसकी समझमें कुछ भी न आया।

★

प्लेटफार्म पर

गाड़ी लेट थी। प्लेटफार्म पर मुसाफिर इधर-उधर बिखरे पड़े थे—बिखरे हुए। कुछ बेंचोंपर, कुछ अपने बँधे हुए बिस्तरों पर और कुछ सिर्फ फर्शपर ही ऐसे लुढक गये थे जैसे गति बंद हो जानेके बाद लट्टू जमीनपर लुढक जाता है। लुढक न जाते तो और करते क्या? गाड़ी लेट थी। मंजिलकी कल्पना मंद पड गई थी। जब दिलमें जोश न हो, गर्मी न हो, उमंग न हो तो शरीरको सुस्ती और आलस आ दबोचता है, आत्मापर अचेतनताकी मोटी-मोटी तह जम जाती है। लेकिन यह अचेतनता निर्जीव अचेतनता न थी। हालाँकि मुसाफिर जानते थे कि गाडी लेट है, फिर भी उनकी आँखोमे इन्तजार भरा था। उनकी दृष्टि बार-बार उस ओरको उठ जाती थी जिस तरफसे गाड़ीको आना था। और इन्तजार जिन्दगीका निशान है।

कुछ मुसाफिर बिना मतलब, घूम रहे थे। आनन्दने भी प्लेटफार्मके दो तीन चक्कर काटे। उचकती निगाहें मुसाफिरोंपर डाली कि शायद कोई जाना बूझा चेहरा दीख पड़े। दो घड़ी मिलकर बैठें, बातें करें और और वक्त अच्छी तरह गुजारे।

"आप मालेरकोट से आये हैं।"

"जी हाँ"

"और अब लाहौर जा रहे हैं?"

"जी हाँ"

मुसाफिरने दोनों बार "जी हाँ" बेदिलीसे कहा और चकित-सा आनन्दकी तरफ

ताकता रहा। आनन्दके होठोंपर फैली हुई परिचय-वाचक मुस्कुराहट भी उसके चेहरेपर वाकफीयतके चिह्न प्रकट न कर सकी।

"मैं वहाँ मनमोहनके पास आया करता हूँ।" उसकी सुप्त स्मृतिको सजग करने के लिए आनन्दने पानीका छींटा मारा और वह चौंका —

"अच्छा, अच्छा, बहुत अच्छा। लाहौर तकका साथ हो गया।" एक हल्की-सी मुस्कराहट मूँछोंके तले प्रकट हुई जो परिचयके बजाय अजनबीयतका समर्थन करती थी।

"कुछ खयाल नहीं आता" उसने दिमागपर जोर डाला "शायद मैं पिछले दिनों बीमार रहा हूँ, इसलिए आपको देखा नहीं।"

"देखा नहीं, कितनी अचरजकी बात है।"

"बैठिए, अभी आता है मोहन।"

"बेटा, बाबूजीको कुर्सी दे।"

"दूध मँगवाऊँ आपके लिए ?"

बहुत सी मुलाकात और रस्मी और गैर रस्मी वाक्य आनन्दके स्मृति-पटपर उभर आये।

मनमोहन आनन्दका मित्र था। वह कवि भी था, जर्नलिस्ट भी। जब कभी वे इकट्ठे होते तो साहित्य और राजनीतिपर रोचक और विद्वत्तापूर्ण बातचीत होती। आनन्दको मनमोहनसे मिलकर वाकई खुशी होती थी। लेकिन उसे लालाजीसे कोई दिलचस्पी न थी। जब कभी उन्हें बोलते सुननेका मौका मिलता तो वे करते बाजार के उतार-चढ़ावकी बाते, सौदाबाजीकी बाते, लाभ और हानि की बातें। मनमोहनमें और उनमें अगर कोई सम्बन्ध स्थापित था तो शारीरिक और सासारिक। इस रिश्ते का आत्मासे कोई सम्बन्ध न था। साले और बहनोईमें कोई बात मिलती जुलती न थी। आनन्दमें और लालाजीमें भी कोई बात एक नहीं थी। अगर लालाजी उसे शक्लसे पहचान भी लेते तब भी वे अजनबी ही रहते। उन सैकड़ों मुसाफिरोंकी तरह जो प्लेटफार्मपर पड़े गाड़ीका इन्तजार कर रहे थे। फिर भी लालाजीके इस अनजान-पनेसे आनन्दको आघात सा हुआ, जैसे उन्होंने उसे किसी प्रसन्नतासे वंचित कर दिया हो।

आनन्दने मनमोहन, उसकी पत्नी और बच्चोंके सम्बन्धमे चंद बाते लालाजीसे की। वे फर्शपर बैठे-बैठे उनका जवाब देते रहे जिस तरह वे दुकानपर बैठे सामने खड़े ग्राहककी बातोंका जवाब दिया करते हैं। फिर आनन्द चुप हो गया। वैसे ही दो मिनट तक उनकी ओर देखता रहा। उन्होंने फेल्ट कैप पहन रक्खा था। माथेपर

कंगूका टीका लगा था। वे ससुरालसे आये थे। हरेक हिन्दू दामाद जब ससुरालसे रवाना होता है तो उसके माथेपर यह टीका लगाया जाता है। २० साल पहले जब लालाजीकी शादी हुई थी तब यह टीका लगना शुरू हुआ था और अब भी जब कि वे बुढ़ापेके करीब पहुँच गये थे, लगता चला आता था। रस्म जो पड़ गई थी। और रस्म समयकी परवा नहीं करती।

प्लेटफार्मका घंटा बंद पड़ा था। घड़ीकी सूइयाँ पौने सातपर ठहर गयी थीं। रेलवेवालोंने सूइयोंपर कागज चिपका दिया था ताकि देखनेवालेको उनके ठहरे होनेमें संदेह न रहे। आनन्दने डायलकी पेशानीपर चिपके हुए उस कागजकी ओर फिर लालाजीके माथेपर लगे कंगूके टीकेको देखा और मन ही मनमें कुछ सोचता और मुस्कराता हुआ एक तरफको चल दिया।

थोड़े फासलेपर बेंच रखी थी जो वास्तवमें दो बेंचोंसे मिलकर बनी थी। इसीलिए मुसाफिर उसके दोनों तरफ बैठ सकते थे। वे देखते तो पूर्व और पश्चिमको थे, लेकिन कमरें दर्मियानमें मिल जाती थीं। इस बेंचपर एक सीट खाली थी। पास ही दो तीन आदमी घूम रहे थे। आनन्द खाली सीटकी तरफ लपका। उसे डर था कि कोई और आदमी उसपर कब्जा न जमा ले। आनन्दने अपना कम्बल खाली सीटपर फेंका और पाँव फैलाकर और कमर बेंचकी पुश्तसे लगाकर आरामसे बैठ गया। पर बैठते ही उसकी अंतरात्मामें एक भाव उठा और उसका मन ग्लानिसे भर गया। आखिर इस जल्दबाजीकी जरूरत क्या थी? अगर कोई और बैठ जाता तो भी क्या? आदमी पढ़ लिखकर और सोचते हुए भी कमीना ही रहा। वह स्वार्थको कितना महत्त्व देता है। अगर यह कमीनापन—अपनेपनका यह घमंड मिट जाये तो बहुत सी समस्याओंका हल आप ही आप हो जाये।

आनन्दके करीब ही एक आदमी बैठा सिगरेट पी रहा था और उसका धुआँ धीरे-धीरे हवामें छोड़ रहा था। उसके परली तरफ एक देहाती बैठा था जो खोमचेवालेसे गुड़की रेवड़ियाँ खरीद लाया था। और दांतों और जबड़ोंकी समस्त शक्ति लगाकर उन्हें चबा रहा था अथवा चबानेकी कोशिश कर रहा था। सिगरेट पीनेवाला मुसाफिर उसे कुछ अच्छी नजरसे न देख रहा था। उसे अपनी श्रेष्ठताका एहसास था और वह उससे यों खिंचकर बैठा था जैसे अपनी श्रेष्ठताकी रक्षा कर रहा हो।

बेंचकी दूसरी तरफ दो नौजवान बैठे थे। एकके पास अखबार था लेकिन वह उसे पढ़ नहीं रहा था, बल्कि दूसरे नौजवानके साथ बातें कर रहा था। दूसरा नौजवान शायद काँग्रेसी था, क्योंकि उसने गाँधी टोपी पहन रखी थी। वह बोला.—

केन्द्रीय चुनावका असर प्रान्तीय सभाओंपर भी पड़ेगा ?

"क्यों नहीं, जरूर !" उसके साथीने मुस्कराकर जवाब दिया, "चुनाव देशकी राजनीतिका पैमाना है। स्पष्ट है कि लीग मुसलमानोंमें उतनी ही ताकतवर है जितनी कॉंग्रेस हिन्दुओं में।"

"यह आप कैसे कह सकते हैं ?"

"कहना क्या, एलेक्शनका नतीजा आपके सामने है।"

कांग्रेसी नौजवान चुप हो गया जैसे कुछ सोच रहा हो। हॉं वह सोच रहा था। और इस तरफकी बेंचपर बैठा गॅवार देहकान एक सख्त-सी रेवड़ीको तेज-तेज दाँतोंसे चबा रहा था। मगर इतनी सख्त और चीमड़ थी वह रेवड़ी की काबूमें न न आती थी। दाँत उसे काटनेकी बजाय उसके अन्दर धँस जाते थे। वह दो उंग-लियाँ मुँहमें डालकर दाँतोंमें फँसी हुई रेवड़ीको निकालता और फिर पलटकर दाँतों तले रखता। आखिर वह कुछ नर्म हुई और काबूमें आ गई। कॉंग्रेसी नौजवान फिर बोला।—"नतीजा तो जरूर है। पर कोई अच्छी बात नहीं।"

"आप हक़ीकत मानिए। अच्छी बुरीका फैसला वक्त कर देगा।"

कांग्रेसी नौजवानकी आँखें प्लैटफार्मके घंटेकी तरफ उठ गयीं। शायद वह देखना चाहता था कि गाड़ी आनेमें अभी कितनी देर है। लेकिन घंटा बंद था और अचल सुइयोंपर कागज चिपका था, ताकि देखनेवाले धोखा न खायें। कॉंग्रेसी नौज-वानकी आँखोंमे निराशाकी लहर दौड़ गयी। जब सुइयाँ बंद पड़ी थीं, तो फैसलेका वक्त कैसे आयेगा। "चार बजनेमें पाँच मिनट बाकी हैं।" अखबारवाला नौजवान आस्तीन हटाकर कलाईपर बँधी घड़ी देख रहा था, "बस थोड़ी देर और।"

लेकिन यह थोड़ी देर चुपचाप बैठना कठिन था। उसने अपने साथीसे कहा।—"इस हालतमें मुझे एक स्वस्थ चिह्न दीख पड़ता है। देशकी राजनैतिक वृत्ति दो सबल नदियों, गंगा और यमुनामें बह निकली है। जब भी वे एक संगमपर जा मिलेंगी, देशकी किस्मत जाग उठेगी।"

"पर वह संगम आयेगा कहाँ। एक पूर्वको बह रही है और एक पश्चिम को।"

"पूर्व और पश्चिम को ?"

"जी हाँ।" निराशामें जोश झलक रहा था, "कॉंग्रेसका नारा है हिन्दुस्तान छोड़ दो और लीग चिल्लाती है पाकिस्तान ! पाकिस्तान !—देशके हिस्से करो।"

एक नौजवान चहलकदमी करता हुआ बेंचोंके करीबसे गुजरा। उसने सर्जका बढ़िया सूट पहन रखा था और हाथोंपर समूरके दस्ताने चढ़े थे जो उसने सुबहकी सर्दीसे उँगलियोंको ठिठुरनेसे बचानेके लिए पहने थे। लेकिन अब जब कि दोपहर

ढल चुकी थी, धूप तेज थी और दस्तानोंकी जरूरत नहीं थी, वह उन्हे बदस्तूर पहने हुए था । जैसे वह कोई स्वस्थ जवान नहीं, गठियेका रोगी हो और उसे दस्ताने पहननेकी वाकई जरूरत हो । वह होठों ही होठोंमें कोई गीत गुनगुना रहा था और हाथो से ताल देता हुआ ऐसे चल रहा था जैसे दस्तानोंकी नुमाइश कर रहा हो, और नुमाइश और दिखावेकी हविस स्वस्थ आदमीको भी रोगी बना देती है ।

"मुझे अब याद आया, आप वहाँ आया करते थे । आपकी घरवाली भी साथ होती थी। आपकी शादी अभी हुई है?"

"जी हाँ ।"

लालाजी अपनी जगहसे उठकर आनंदके करीब आ गये थे । बेंचपर स्थान नहीं था, इसलिए दाईं ओर फर्शपर बैठ गये और बोले,—"बीमारीने दिमाग कमजोर कर दिया । कुछ भी याद नहीं रहता । जरा-सी बात सोचनेके लिए इतना वक्त लगा ।"

लालाजी अपनी बीमार तबियतको बहलानेके लिए बातें करना चाहते थे और सफरमें साथ करनेकी चाह उन्हें आनन्दके करीब खींच लायी थी । लेकिन वह उसकी मजबूरी नहीं पहचानते थे, क्योंकि वे आत्माकी दूरीसे अपरिचित थे ।

इस विचारसे कि वे कहीं कोई शुष्क और निरानंद बात शुरू न कर दें, जिसे वह अपने देहाती साथीकी रेवड़ीकी तरह चबा न सके, आनन्द बाईं ओरको देखने लगा। उसकी निगाहें बार-बार उस जगह जाकर रुकती थीं, जहाँ एक बूढ़ी औरतके पास एक जवान औरत फिरोजी दुपट्टा ओढ़े बैठी थी । शायद उसका विवाह अभी हुआ था, क्योंकि उसके हाथोंमें मेंहदी रची थी । गोरी मखरूनी उँगलियाँ सुन्दरताका एहसास दिलाती थी । आनन्दकी आँखें उसकी मनमोहनी सूरत देखनेको तरस रहीं थी, पर वह आधा घूँघट निकाले हुए थी—आधा, शायद वह उसे भी उतार फेंकना चाहती थी, लेकिन कोई झिझक रुकावट डालती थी। उसके हाथ इस झिझककी रुकावटको उतार फेंकनेके लिए काफी सबल न थे, और गोरी घूँघटमें जल रही थी । आनन्दकी निगाहें उसे देखनेके लिए तरस रही थीं । प्लैटफार्मका घंटा बन्द पड़ा था।

दूसरे प्लैटफार्मपर बैंड बज रहा था । उसकी आवाजमें मधुरता थी, एक सुहावनापन था, जैसे वह युद्धके मोर्चेसे लौटनेवाले विजेता सिपाहियोंका स्वागत कर रहा हो । देशकी स्वतंत्रताके लिए लड़नेवाले विजेता सिपाही और यह बैंड, वाकई एक सुन्दर कल्पना थी ! उस तरफका सिगनल हो चुका था । गाड़ी आनेवाली थी । वह लेट नहीं थी । शायद वह कभी लेट नहीं हुई । और उस प्लैटफार्मका घण्टा भी ठीक चल रहा था ।

"यह कंट्रोल कब हटेंगे बाबूजी।"

बैंडकी आवाज बन्द हो गयी। आनन्दको लालाजीका सवाल असंगत और अनुचित मालूम हुआ। आखिर यह कौनसा समय था कंट्रोलकी बात करनेका? उन्हें दुकानदारीके अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं। उनका बीमार दिमाग भी खरीदी-फरोख्त और सौदेबाजीके सिवा कुछ नहीं सोच सकता? और वह भी इस समय जब कि वे दूकानसे कोसों दूर बैठे हैं। दूकानसे पहले गाड़ीके आनेकी चिंता जरूरी है।

"यह बात गलत है कि वे आजादी नहीं चाहते। उनकी शंकाएँ दूर कीजिए। उन्हें जीनेका हक दीजिए। वे भी आपके साथ है।"

"साथ हैं तो लड आजादीके लिए सौदेबाजी क्यों करते हैं?" कांग्रेसी नौजवानने जवाब दिया।

बैंड बन्द हो गया था। या दूसरे प्लेटफार्मपर गाडी आ जाने और शोर बढ़-जानेके कारण सुनायी नहीं देता था। कंट्रोल और सौदेबाजीके शब्द आनन्दके मस्तिष्कमें भिड़ोंकी तरह डक मार रहे थे। विष अङ्ग-अङ्गमें पैठता जा रहा था और बेचैनी बढ रही थी। हमारी राजनीति भी सौदेबाजीसे मुक्त नहीं। जब हरेक वस्तुका आधारमात्र अर्थ है, तो फिर लालाजीसे नफरत क्यों? शायद इसलिए कि उनकी मनोवृत्तिमें दुकानदारीको हदसे ज्यादा दखल है। हदसे ज्यादा दुकानदारी भावनाओंको कुचल देती है और निरी भावुकतासे बुद्धिमें ग्रह-सा लग जाता है।

इन विचारोंसे पीछा छुडानेके लिए आनन्द दूसरी ओर चल रही बहसमें दिलचस्पी लेने लगा, जो इस समय काफी उलझ गयी थी। अखबारवाला नौजवान कांग्रेसी नौजवानको समझा रहा था कि पाकिस्तानकी माँग की पृष्ठभूमि एकदम राजनीतिक है। राजनीतिकी उन्नति और वक्तकी रफ्तारके साथ-साथ इसने यह रूप धारण किया है। यह देशका दुर्भाग्य है कि यहाँ हरेक बात सियासी होनेके बावजूद भी मजहबी रग अख्तियार कर लेती है।

"हिंदुस्तानका कुछ बनेगा भी?"

आनन्दको बहसमें दिलचस्पी लेते देखकर लालाजीका ध्यान भी उधर चला गया था। पर उसकी बीमार तबियतको बहलानेके लिए सिर्फ सुनना काफी नहीं था। वे बातें करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने यह सवाल पूछा था।

"बनेगा क्यों नहीं।"

"हमें तो कुछ नजर नहीं आता। आखिर कब बनेगा?"

"बहुत जल्द।"

आनन्दने दोनों बार संक्षिप्त और अनमना-सा उत्तर दिया, क्योंकि वह लालाजीके साथ लम्बी बातचीतमें उलझना नहीं चाहता था। उसे अखबारवाले नौजवानकी

बातें बहुत पसन्द थीं, जो कांग्रेसी नौजवानको अपना दृष्टिकोण शान्ति, गम्भीरता और बुद्धिमत्तासे समझा रहा था।

"अगर गाड़ी लेट न होती तो हम अब तक जालंधरके करीब पहुँच गये होते।" आनन्दके करीब बैठे मुसाफिरने सिगरेटके टुकड़ेको दूर फेंकते हुए कहा।

"आपको जालंधर जाना है?" आनन्दने पूछा।

"जी हाँ।" उसने उत्तर दिया और एक मधुर मुस्कान उसके होंठोंसे उत्पन्न होकर तमाम चेहरेपर फैल गयी। शायद घरपर बैठी बाट जोहती सुन्दर पत्नीका विचार उसके मनको गुदगुदा रहा था। फिर उसे दूसरोंके सम्मुख, यह खाम-खाह की मुस्कराहट बोझ-सा महसूस हुई और वह सबसे नजरें हटाकर उस घूँघटवाली गोरीकी ओर देखने लगा। लेकिन लालाजी बोले—

"जंग शुरू होते ही यह गाड़ी लेट आने लगी थी और अब तक आ रही है।"

"और घंटा" मैंने उँगलीसे सकेत किया, "जंग शुरू होते ही बन्द हुआ था और अब तक बन्द पड़ा है।"

सब लोग हँस पड़े, जैसे उन्होंने घण्टेको बन्द पड़े पहली बार देखा हो। कहने का ढङ्ग हास्य-प्रद तो था ही, पर आनन्दको इस बातकी आशा न थी। वह एक नुकतेपर पहुँचकर रुक गयी थी। वे दोनों नौजवान भी इधरकी बात सुन रहे थे।

"खूब! खूब!!" अखबारवाला नौजवान बोला। आनन्दकी बातको शायद उसने सबसे अधिक समझा था। और बेंचके सहारे उसकी ओर झुकते हुए कहा—"मैं भी तो इन्हें यही समझा रहा था। हमारी सियासतमें डेडलाक पैदा हो गया है। उसे दूर करनेकी जरूरत है।"

"तुम्हारी पतलूनमें झोल पड़ता है और बहुत ही बदनुमा।"

दस्तानोंवाला नौजवान घूमते घूमते अपने किसी मित्रके साथ फिर उस बेंचके निकटसे गुजर रहा था और उसका मित्र पतलूनके नुक्सकी ओर इशारा करके यह बात कह रहा था।

"हाँ सिली नहीं। जाकर दुरुस्त करवाऊँगा।"

उसने जवाब दिया और शर्मिंदा-सा हो गया हालाँकि दोष उसका नहीं दरजीका था। लेकिन उसे एहसास था कि उसने यह झोल अपने ऊपर चस्पाँ क्यों कर लिया। उसने दस्ताने उतारकर जेबोंमें ठूँस लिये, जैसे उनकी नुमायशका मकसद इस झोल को छुपाना मात्र हो।

अखबारवाला नौजवान और आनंद एक साथ हँस पड़े। पतलूनके झोलपर

नहीं और न ही उस नौजवानकी शर्मिन्दगीपर। उनकी निगाहें इस झोलमें किसी और सत्यको देख रही थीं। कॉंग्रेसी नौजवानकी दृष्टि उस सत्य तक नहीं पहुँची थी, इसलिए वह हँसीमें उनका साथ नहीं दे सका। वह अप्रतिभ-सा हो गया, जैसे यह झोल उसकी आत्मा, उसके विचारसे चिपक गया हो। इसे झटक देनेकी गरजसे उसने एक लम्बी अँगड़ाई ली और फिर कहा,—"पाकिस्तानको मान भी लिया जाए तो लीग कोई और स्टंट खड़ा कर देगी।"

"तो पाकिस्तानको आप स्टंट समझते हैं ?"

"मेरा यह मतलब नहीं।' वह हाथकी उँगलियाँ मटकाने लगा।

"आपका जो मतलब है सिर्फ वही कहिए।" अखबारवाला नौजवान उसकी ओर देखकर मुस्कराया बहुत। कुछ अनकहा इस एक मुस्कराहटने कह दिया। और फिर आनन्दकी ओर यों देखा, गोया वह उसका चिरकालका मित्र हो और अपनी बातका समर्थन चाहता हो। लेकिन आनन्द यह भी नहीं जानता था कि वह हिन्दू है या मुसलमान। किधरसे आया है कहाँसे जाएगा ? लेकिन यह एक दूसरा सत्य है कि वह उसकी आत्माके अति निकट था। आत्माके मेलसे बेगानापन आप ही मिट जाता है।

कॉंग्रेसी नौजवान उनकी ओर देख रहा था गोया कह रहा हो,—"मैंने आपकी बात मान तो ली, पर विश्वाससे नहीं, जरूरतसे मजबूर होकर। कुछ भी हो बहस एक नुकतेपर पहुँच गयी थी। गाडीका सिगनल हो चुका था। और दूरसे इंजनका धुआँ दीख पड़ता था। आनन्दके पास बैठे आदमीने परे बैठे देहकानसे जो सारी रेवड़ियाँ खत्म कर चुका था, कहा—

"यह बक्स तुम्हारा है ?"

"जी हाँ।"

"और यह मेरा है। मैं ऊपर चढ़ जाऊँगा। तुम यह बक्स एक-एक करके मुझे पकड़ा देना या तुम चढ़ जाना मैं पकड़ा दूँगा।"

"जी बहुत अच्छा।"

अजनबियत मिट गयी थी। जरूरतने दोनोंमें समझौता करा दिया था। गाड़ी सिगनेलके अन्दर दाखिल हुई। सबकी आँखें मंजिलपर पहुँचनेके एहसाससे चमक उठीं। समस्त प्लैटफार्मपर एक सिरेसे दूसरे सिरे तक ज़िन्दगीकी लहर दौड़ गयी। अब वह गोरी भी घूँघट उठाकर चाव-भरी दृष्टिसे गाड़ीकी ओर देख रही थी। ऐसा मालूम होता कि जिन्दगीकी यह लहर जड़ता, बेगानगी और पुरानेपनको कूड़े-कर्कटकी तरह उठाकर दूर, दूर—कहीं बहुत दूर फेंक आयी है। सब मुसाफिर थे, जीवनसे ओत-प्रोत इंसान थे और सबकी आँखें मंज़िलपर पहुँचनेके एहसाससे चमक उठी थीं।

बल्लू की बीर

"कहते हैं कि बड़ा वजीर जेल देखने आएगा !"—बल्लूने अपने साथी बोधासे दरियाफ्त किया ।

"हाँ सुनते तो हैं ।"—बोधाने जवाब दिया ।

"और कुछ कैदी भी रिहा करेगा ?"

"जब आएगा तो करेगा जरूर ।"

बल्लूका चेहरा खिल-सा गया और होठोंपर हल्की-सी मुस्कराहट दौड़ गयी । बोधा करुणायुक्त दृष्टिसे उसकी ओर देखने लगा ।

बल्लू ठाकुर था और बोधा चमार । लेकिन वे दोनों कैदी थे । दोनोंको एक ही मुख्तसिर वर्दी और एक लोटा प्याला मिला था। और दोनोंकी रोटी भी एक ही लंगरसे बनकर आती थी । इसके बावजूद समाजने उनके दर्मियान जाति-पाँतिकी जो सीढ़ी खड़ी कर दी थी, वह मिट न सकी थी । इतने निकट रहते हुए भी उन्होंने एक दूसरे को कभी छूनेकी कोशिश नहीं की थी । हाँ, पास रहते हुए दो पीड़ित प्राणियोंमें जो प्राकृतिक सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है, वह उनमें भी हो गयी थी । बल्कि इस सहानुभूतिने उस ममताका पद प्राप्त कर लिया था, जो आपसकी फिजूल, निरर्थक और बेकार बातें भी सुन सकती हैं ।

कारण शायद यह हो कि बोधाकी अपेक्षा बल्लूको उसकी हमदर्दीकी ज्यादा जरूरत थी ।

बल्लू रोहतकके करीब रियासत जिंदके हथवाला गाँवमें रहता था । उसका

ब्याह हुए चार पाँच दिन हुए थे। मुकलावा अभी पन्द्रह बीस दिनमें आना था। इस बीचमें उसकी पानी देनेकी बारी आ गयी। जब वह खेतमें पहुँचा तो उसका पड़ोसी अपनी गन्नेकी फसलको सींच रहा था, बल्लूने उसे पानी छोड़ देनेको कहा क्योंकि उसका पहर खत्म हो चुका था। मगर उसने अपने खेतको पूर्ण सींचे बिना पानी छोड़नेसे इनकार कर दिया। वक्त पर पानी छोड़ देनेका मतलब यह था कि वह अपनी कीमती फसल खराब कर ले। उसे यह बात पसन्द नहीं थी। अगर अपने हितकी रक्षाके लिए उसे अनुचित लड़ाई भी लड़नी पड़े, तो वह लड़नेको तैयार था। लेकिन बल्लू झगड़ेसे कन्नी काटता था। उसे जीवनमे इतने दुख सहने पड़े थे कि उसमे लड़नेका साहस ही शेष न रहा था। घरमें अकेला आदमी लड़े तो किसके सहारे? लेकिन पानी कमजोर पड रहा था, नहर न जाने कब भर जाती। इस वक्त पानी न मिलनेका मतलब था कि खेत सूखा पड़ा रहे और तमाम फसल नष्ट हो जाए। उसने खुशामदके लहजेमें कहा·—"देखो भाई! यह जोर जबरदस्ती ठीक नहीं। तुम्हारा वक्त खत्म हो गया। अब पानी मुझे दे दो।" 'कौन कहता है वक्त खत्म हो गया? अभी तो आधा पहर भी नहीं लगा।" पड़ोसीने बल्लूको दुरुस्त समझते हुए दलील पेश की और नाक चढायी,—"बड़ा आया है वक्त वाला।"

"कड़ुवा क्यो बोलते हो भाई। मानस मानस सब एक है और सभी जान रखते हैं।"

"जान रखता है तो लेकर दिखा न बदला। तुम्हारा तो मानस मार रखा है।" पड़ोसीने कहा और छाती ठोक ली।

बहुत दिनोंकी बात थी। किसी ऐसी ही बात पर झगड़ा हो जानेके कारण पड़ोसी के दादाने बल्लूके दादाको मार डाला था। तबसे दोनो कुटुम्बोमे दुश्मनी चली आयी थी। बल्लूने उसे भुलानेकी कोशिश की थी। उसने क्रोध और द्वेष छोड़नेका फैसला किया। वह जाटोंकी आम रविशसे हटकर शान्तिमय जीवन बताना चाहता था, मगर समुद्र सूखेगा भी तो कहाँ तक? जाटको क्रोध था। जरा आँख दिखानेपर भड़क उठा। पानीको जितना रोककर रखा जाता है, बंद टूट जानेपर वह उतनी ही तेजीसे चलता है। बल्लूने आव देखा न ताव, लाठीका एक भरपूर हाथ दे मारा। पड़ोसीकी खोपड़ी फट गयी। वह औधे मुँह ऐसा गिरा, कि फिर न उठ सका।

बल्लूके विरुद्ध कत्लका मुकदमा चला। विरोधी दलका गाँवमें बहुत प्रभाव था और पैसेके बल पर पुलिसको भी हाथ कर लिया गया। गवाहोंने सिद्ध किया कि बल्लू मृतिक व्यक्तिके खेतमे उसका समय समाप्त होनेसे पहिले गया। उसने चिर शत्रुताके कारण झगड़ा खड़ा किया और बदला लेनेके हेतु उसका बध कर दिया। इरादेसे की गयी। हत्याके जुर्ममें बल्लूको बीस साल कैद सख्तकी सजा हुई।

बल्लूको कैद काटते छः सालसे अधिक समय बीत गया था। तबसे अब तक वह तिल तिल करके घुलता जा रहा था, उसका सुडौल शरीर सूखकर काँटा हो गया। पत्नीका गम उसे अन्दर ही अन्दर खाये जाता था। चौतीस-पैंतीस वर्षकी आयुमें यह तीसरा ब्याह हुआ था। इस ब्याहके आठ नौ साल पहिले केवल तीन वर्षके अरसेमें उसकी दो पत्नियाँ—एक हैजासे और दूसरी प्रसूति-ज्वरसे—मृत्युका शिकार बन चुकी थी। इसलिए बल्लू न सिर्फ अपने गाँवमें, बल्कि अडोस पडोसके समस्त देहातमें "औरतें खाता" प्रसिद्ध हो गया और कोई आदमी अब उसे अपनी लडकी देनेको तैयार नहीं था। आखिर उसके चाचाने बड़ी दौड धूपके बाद अपने सालेकी लडकी लाकर दी थी और उस बेचारी पर भी यह मुसीबत टूटी।

एक नौजवान औरतका गम और वह भी ढलती जवानीमें। बल्लूको बुखार रहने लगा।

पहले वह खड्डी खानेमें काम करता था। लेकिन अब सख्त मशक्कतके अयोग्य होनेके कारण बोधाके साथ ड्योढी पर लगा दिया गया। यहाँ काम मात्र इतना ही था कि कोई अफसर आए तो, उठकर उसे सलाम कर दे, गुजरनेके लिए दरवाजा खोल दे अथवा घंटी बजा दे। सलामके अलावा और सब काम बोधा आप ही कर लेता था। वह अगरचे बूढा आदमी था, लेकिन अपना काम चाव और चुस्तीसे करता। क्योकि उसे बल्लूको देना पसन्द नही था, उसका सुता हुआ चेहरा और रोगी शरीर देखकर हरेक व्यक्तिके मनमे उसके प्रति करुणा उत्पन्न होती थी। लेकिन जेल के कानून उसे काम करने पर मजबूर करते थे। बल्लूने बोधाकी त्याग-वृत्ति देख कर उसे अपने मनके हरेक कोनेमें झाँकनेकी आज्ञा दी थी और उसे अपनी दुखद कहानी सुनाकर कहा था।—"अगर उस समय पड़ोसीकी जरा सी बात सह लेते तो यह नौबत तो न आती।"

"ठाकुर! बात ही तो सही नहीं जाती। जो अनाज खाता है उसे क्रोध भी जरूर आएगा।"

बोधाने दार्शिनिक भावसे उत्तर दिया।

* * *

वे दोनों मिल जुलकर मुसीबतके दिन काट रहे थे, जब कोई बोधाके घरसे मुलाकात करने आता, तो बल्लूको अपने घरकी याद और भी सताने लगती। यही याद तो थी जो उसे घुनकी तरह खाये जाती थी, मगर बोधाकी बात ही और थी। ऐसा मालूम होता था, कि उसने अपने आपको जेल जीवनके अनुकूल बना लिया है, क्योंकि वह अपना काम बड़ी दिलचस्पीसे करता था। उसने घंटी बजानेमें वह

अभ्यास प्राप्त कर लिया था, कि कैदी उसके अंदाजसे ही समझ जाते थे, कि यह घंटी डाक्टर, रोटी अथवा किस चीजकी है। लेकिन जब बल्लू घंटी बजाता, तो वह ढीले हाथसे दो चार बार टन टन कर देता। जब उसे अपने दिलकी धड़कनमें ही कोई जिन्दगी महसूस न होती थी, तो वह घंटी बजानेमें ही क्या आनन्द प्राप्त करता ?

वह दीवारके साथ टेक लगाये बैठा रहता। सामने सफेदेका एक वृक्ष था। पिछले साल कुछ दिनोंसे उस पर एक मैना आकर बैठने लगी थी। बल्लू हसरत-भरी निगाहोंसे उसे देखा करता। जब बोधाने देखा कि उसके साथीकी निगाहें सब एक ही दिशामें पड़ती हैं, तो वह भी उसी ओर देखने लगा। तब बल्लू बोलाः—
"यह हमेशा अकेली ही बैठती है।"

"हॉं, अकेली ही बैठती है। मालूम होता है इसका अभी जोड़ा नहीं बना।"

"जोड़ा तो शायद बन चुका है, पर इसकी सालीको किसीने पकड़ लिया है।"

"हाँ, ऐसा भी हो सकता है।" बोधाने सिर हिलाते हुए स्कीकार किया।

"तो क्या अब वह नहीं आयेगा ?"

"जब उसे पकड़ ही लिया, तो अव वह क्या आएगा।"

बल्लू एक गहरी सॉस छोड़कर रह गया। इसके बाद जब कभी उसे मौका मिलता, वह इस प्रसंगको दोहराया करता और उसके दुखी मनको एक निश्वास छोड़-कर शान्ति प्राप्त होती। कभी कभी वह बोधासे इधर-उधर और बेसिर-पैर की बातें पूछा करता। मसलन ड्योढ़ीके ऊपर मोर बना था, जिसके कारण उसे मोर-ड्योढ़ी भी कहते थे। बल्लूने उसे गौरसे देखा और बोधासे दर्याफ्त किया·—"यह मोर धात का बना है ना ?"

"हाँ, धात ही का बना है।" बोधाने जवाब दिया, "जिस्तका होगा।"

"और क्या, जस्तका न हुआ तो लोहेका होगा ? अन्दरसे खोखला है ?" बल्लू को खूँ-खूँ खुश्क खाँसी आयी और छाती जोरसे धड़की।

बोधाने सहानुभूतिकी दृष्टिसे उसकी ओर देखते हुए जवाब दियाः–"हाँ खोखला है और पुराना भी। अब तो यह समझो कि इसकी मियाद ही खत्म हो गयी।"

बल्लूको एक कपकपी सी महसूस हुई। शायद बुखार चढ़नेका समय निकट आ रहा था। लेकिन ध्यान इस ओरसे हटाये रखनेकी नीयतसे उसने एक और प्रश्न पूछा —"इसका यह एक बाजू कैसे टूट गया है ?"

बोधा पुराना कैदी था। बीस सालकी कैदमेंसे सोलह साल काट चुका था और जेलकी हरेक बातसे वाकिफ था। उसने बल्लूको बताया कि एक बार कैदियोंकी दो पार्टियाँ बन गयी थीं। उनकी आपसमें लड़ाई ठनी और इतना फिसाद मचा कि उसे

शान्त करनेके लिए अफसरोंको पल्टन बुलानी पड़ी। उस समय कैदियोंको डरानेके लिए गोली चलाई गई थी और वह गोली इस मोरके बाजूमें लगी थी, जिसके कारण टूट गया। बल्लूने यह बात स्वीकार करली, लेकिन बोधाके असीम ज्ञानसे प्रभावित होकर एक सवाल और पूछाः—

"बोधा यह जेल कबसे बनी है?"

"ठीक तो कुछ मालूम नहीं, पर जब यह शहर बसा होगा, तभी यह जेल भी बनी होगी।"

"नहीं बोधा तुम मेरा मतलब नहीं समझे।" बल्लूने तनिक मुस्कराकर कहा, "मै इस जेलकी बात नहीं करता, बल्कि यह पूछता हूँ कि मानसने मानसको जेलमें रखना कबसे शुरू किया?"

बोधाने न इतिहास पढ़ा था और न वह मानव समाजके विकासवादसे परिचित था; फिर वह बल्लूके इस प्रश्नका क्या उत्तर देता? उसने एक गहरी नजर अपने साथी पर डाली और सोचा कि दुखसे आदमीकी बुद्धि तेज हो जाती है। वह बोला,—"ठाकुर, इतना गम न किया करो। यह गम अच्छा नहीं होता।"

बल्लूकी आखें भर आयीं। लेकिन उसने आँसू जब्त करते हुए कहा,—"बोधा, मेरे क्या बसकी बात है? बीर जवान है। और घर पर कोई दूसरा कमानेवाला नहीं है। उसका गम तो करना ही पड़ता है।"

"क्यो करो तुम उसका गम? क्या तुम्हारी बीरको और आदमी नहीं मिलता?" बोधा हँसा और मधुर चोट की, "वह तो शायद तुम्हें याद भी न करती होगी।"

अगर इस चोटमें प्रेमकी मिठास न होती, तो बल्लूके लिए सहन करना कठिन होता और वह चिढ़ जाता। पर अब तो आहत दृष्टिसे उसने अपने साथीकी ओर देखते हुए कहा,—"नहीं बोधा, तुम नहीं जानते। वह भले घरकी लड़की है। भीतर ही भीतर कुढ़ती रहेगी, लेकिन किसीकी ओर आँख उठाकर न देखेगी।" और फिर उच्च जातिका अभिमान आँखोंमें भरकर कहा—"हम ठाकुर हैं। हमारे यहाँ औरतोंको परदेमें रखा जाता है।"

मईका महीना, गर्मी बढ़ रही थी। जेलके अहातेमें नीमके कुछ दरख्त थे। दोपहरकी छुट्टीके समय कैदी उनकी ठण्डी छायामें आराम करते। बल्लू भी कई बार वहाँ आ बैठता और उन बगुलोंकी ओर देखा करता, जो इन वृक्षों पर अपने घोंसले बना रहे थे और दिन भर सपेदेकी फुनगियों परसे तिनका तोड़ा करते थे। बल्लू सोचता। उनके अण्डे देनेके दिन नजदीक आ रहे हैं, तभी तो वे घोंसले बना

रहे हैं। लेकिन मैना अब भी वहीं बैठी रहती है। बहुत हुआ तो इधर उधर उड़ने चली गई और फिर उसी टहनी पर आ बैठी। इस पर बल्लू बोधासे कहता:—

"यह घोंसला भी तो नहीं बनाती?"

"क्या करेगी घोंसला बनाकर। अकेली जान है। जहाँ चाहा बैठ रही। आँधी मेह आया तो किसी वृक्ष या दीवारकी खोहमें जा छिपी। बता तो क्या करना है, उसे घोंसला बनाकर?"

"ठीक कहते हो बोधा। अकेली जानका घोंसला ही क्या?" बल्लूने निराशा-युक्त लहजेमें दोहराया और पूछा—"कुछ लड़ाईकी भी खबर सुनी?"

"ठाकुर, कौन सुनाता है हमें लड़ाईकी खबर। हो रही होगी कहीं।" बोधाने उत्तर दिया और विषाद-भावसे कहा—"हमें तो इससे न कुछ लाभ है, न हानि।"

"लाभ तो क्यों नहीं बोधा। बहुत लाभ होगा जरा देखते जाओ। सुना है सब कैदी छूट जायँगे, जर्मनके देशमें आनेकी है।"

"अच्छा, देख लेंगे। किसीने पूछा था,—नाई बाल कितने लम्बे हैं? वह बोला यजमान आगे ही गिरेंगे।"

बल्लूको जोरकी खांसी आई और बलगमसे मुँह भर आया। वह उठकर थूकने गया और लौटकर बोला:—"बोधा, काम तो खराब हो गया; खांसीके साथ खून आया है।"

"खून आना तो बहुत बुरा है। कहीं तपेदिक न हो गया हो। इलाज कराओ। बहुत बुरा मरज है।"

तपेदिकका नाम सुनकर बल्लूका कलेजा हिल-सा गया और उसने निराशाप्रद दृष्टिसे बोधाकी ओर देखते हुए कहा:—"इलाजकी भी एक ही कही। जेलकी खुराक और उसपर तेलकी सब्जी। इलाज क्या खाक होगा।"

"यह तो सभी जानते हैं कि तेलकी सब्जी नुकसान करती है। पर घोड़ा घास से नफरत करे तो खाये क्या?"

"ठीक कहते हो बोधा! बिलकुल ठीक। कैदी और घोड़ेमें क्या फर्क है। घोड़ेको थान पर बाधकर जो चाहो खिला दो और कैदी बेचारा .."

बल्लूको फिर खांसी आई और उसने खूनका लौदा थूकते हुए छाती पकड़ ली। थोड़ी देर बाद उसे बुखार होने लगा और इतना तेज हुआ कि उसके लिए बैठना मुश्किल हो गया। वह छुट्टी लेकर अपने बिस्तर पर जा लेटा। शामको

डाक्टर आया तो उसे अस्पतालमें दाखिल कर दिया गया।

बल्लूको अस्पतालमें पड़े लगभग दो महीने बीत गये। उसका शरीर खून और खांसीकी शकलमें तब्दील होकर गलता चला जा रहा था। डाक्टर दो वक्त आता और थर्मामीटर लगाकर चला जाता। बहुत हुआ तो मजाककी एक-आध बात कह दी। क्योंकि वह सरकारी डाक्टर था और वह भी जेलका। उसे रोगी पर दया आनेके बजाय हंसी अधिक आती थी। बोधा नित्यप्रति बल्लूकी मिजाज-पुरसीको आता और जितना समय उसे मिलता, वह उसके पास बैठा रहता। बल्लू उससे अकसर पूछताः—

"क्या अब भी वह मैना वहीं बैठती है ?"

"हाँ, वहीं।"

"उसका जोड़ा नहीं बना ?"

"जोड़ा बन तो चुका है, पर उसका साथी किसीने पकड़ लिया।"

"तो क्या अब वह नहीं आएगा ?"

"जब उसे पकड़ ही लिया, तो वह अब क्या आयेगा।"

बल्लू गहरी लम्बी साँस छोड़कर रह जाता। बोधा उसकी आँखोंमें आँखें डाल देता और उन खुली खिड़कियोंमें से वह देख सकता था, बल्लूके सीनेमें कितनी हसरतें तड़प रही हैं। और कितने अरमान छटपटा रहे हैं। मगर वह विवश था, बीमार था। उसने अपनी बीरके लिये प्राणोंकी बाजी लगा रखी थी।

एक दिन शामको पूर्वा चल रही थी। आसमान पर बादलोंके आवारा टुकड़े ऐसे मंडला रहे थे, जैसे मुर्दघाटके गिर्द गिद्धें मंडलाया करती हैं। उन्हें देखकर हर्षमय वर्षाके बजाय किसी भयंकर दृश्यका एहसास होता था। डाक्टर बल्लूको देखने आया और उसे दवा पिलाकर पूछा.—

"सुनाओ अब तबियत कैसी है ?"

"आज तो कुछ ठीक है डाक्टर साहब।"

"हूँ !" डाक्टर रहस्यपूर्ण ढंगसे बड़बड़ाया और कहा, "किसी तरहकी तक-लीफ तो नहीं ?"

"हुजूर" बल्लूने करवट बदलते हुए कहा, "यह बेड़ी बहुत तंग करती है।"

"मैंने रिपोर्ट लिख दी है। यह कल उतर जाएगी।"

"हुजूर माई-बाप हैं। आपने बड़ा रहम किया। मै आपका यह एहसान ऊम्र भर नही भूलूँगा।" बल्लूने सत्य भावनासे कहा और कृतज्ञतापूर्ण दृष्टिसे डाक्टरकी ओर देखते हुए पूछा.—"मैं कल जरूर छूट जाऊँगा, न डाक्टर साहब।"

रियासतकी जेलमें हरेक कैदीको बेड़ी पहनायी जाती है। वह या तो उसकी

रिहाईके समय कटती है या उसकी मौत पर। अगर बहुत हुआ तो डाक्टरकी शिफारिश पर। उसके मामले में डाक्टरने ऐसी ही शिफारिश की थी। लेकिन बल्लू ने बेड़ी उतरनेको रिहाईकी बात समझा और वह यह सवाल पूछ बैठा। डाक्टर तो कहना चाहता था कि बेवकूफ तुमसे रिहाईकी बात कही किसने ? लेकिन उससे यह कठोर शब्द कहते न बन पड़ा। वह कुछ सोचकर मन ही मनमें हँसा और बोलाः—"हाँ कल तुम्हें अवश्य रिहा कर दिया जाएगा। अपनी बीरके पास जाकर तो अच्छे हो जाओगे न ?"

क्षयका रोगी बल्लू मुस्करा दिया।

अर्जुनसिंह रोगियोंकी सेवा शुश्रूषा पर लगा हुआ था। डाक्टरकी अन्तिम बात उसने भी सुनी और विश्वास कर लिया कि कल बल्लूको रिहा कर दिया जाएगा। फैलते फैलते बात सबमें फैल गयी और कैदियोंके मुँह चढ़ी बात जल्द नहीं छूटती। वे जरा जरासी बात इस तरह खोजते फिरते हैं, जिस तरह मुर्गियोंके गौल कीड़े मकोड़े अथवा दीमककी खोजमें लगे रहते हैं। और एक बातके अनेक अर्थ लगते हैं। फिर एक साथीके रिहा होनेकी बात विशेष महत्व रखती थी। रिहाई का शब्द जेहनमें लाते ही इन्हें अपने घर पहुँचनेका एहसास होती थी। बड़ी देर तक इस बातकी चर्चा होती रही और यह बात सोचते वे सो गये।

आधी रातके करीब हवा इतनी तेज हो गयी कि आँधी चलने लगी और न जाने कहाँसे इतने बादल उठा लायी कि एकदम घनघोर घटा छा गयी। समस्त वातावरणमें भयंकर अन्धकार छा गया। वृक्ष हिलने लगे और बादल भयानक रूपसे गरजने लगे। कैदी अपने अपने बिस्तर उठाकर बराकोंमें ले गये और मच्छरों से बचावके लिये चादरें ओढकर लेट गये। वायुका वेग बढ़ता गया। बादलोंकी गरज भयानकसे भयानकतर होती गयी। वृक्षोंके टहने तड़ाक तड़ाक टूटने लगे। आँधी, मेंह, ओले, भायँ भायँ और घररर घरररकी खौफ़नाक आवाजें। सारा संसार काँप रहा था जैसे प्रकृतिके विरोधी तत्व आपसमें टकरा कर सृष्टिको नष्ट भ्रष्ट कर देंगे। इस समय बल्लू बड़बड़ा उठा,—"बीर! बीर!! डरो मत, मैं आया। मुझे रिहाई मिल गयी। मैं आया डरो मत।"

उसे यों बड़बड़ाता देखकर अर्जुनसिंह जिसने थोड़ी देर पहले अपना बिस्तर अन्दर लगाया था और जो गर्मीके कारण सो नहीं सका था, बोला—"क्या बात है बल्लू ?"

"बीर, बीर! मैं आया।" बल्लू फिर चिल्लाया।

"क्यों बहकता है रातके वक्त ? सुबह हुयी कि चले जाना। अब सो जा।"

बल्लू सो गया और सोया एक लम्बी नींद।

* * *

प्रातःकालका उजाला जब प्रकट हुआ तो उसने देखा कि नीमोंके बहुतसे टहने टूट गये हैं। बगुलोंके घोंसले और उनके टूटे अण्डे जमीन पर बिखरे पड़े हैं। और मरे पड़े हैं, वे अपूर्ण बच्चे जिन्होंने जीवनसे मुँह मोड़ कर मृत्युकी चोंच चोंगा लेना पसन्द किया था। कैदी बराकोंसे निकले और बेड़ियाँ झनकारते हुए अपने अपने कामपर चले गये। बोधाने भी लोटा, प्याला और कम्बल उठाकर ड्योढ़ीकी राह ली। उसने जमादारसे चाभी लेकर दरवाजा खोला। आज उसका दिमाग असाधारण रूपसे विह्वल और विकृत था। दरवाजा खोलनेमें किसी दिलचस्पी और मानोभावनाको कतई दखल न था। उसने एक मशीनी कलकी तरह उसे खोल दिया। किवाड़ खटसे दीवारमें लगा और इतना धमाका हुआ कि पुरानी ड्योढ़ीकी चौखट तक हिल गयी। मैना रातको टूटे हुए परके रास्ते खोखले मोरमें दाखिल हो गयी थी। अब यह शोर सुनकर उड़ी और सपेदे पर जा बैठी।

दरवाजा खोलकर बोधाने अपना आसन जमाया और दीवारसे टेक लगाकर बैठ गया। उसकी नजर सपेदेके पेड़ पर टिकी। मैना पहलेकी तरह अपने स्थान पर बैठी थी। यह सोचनेके बजाय कि क्या वह रातके आँधी-मेह और भयानक अधड़ में भी वहीं बैठी रही। उसने सोचना शुरू किया —

"यह हमेशा अकेली बैठती है।

"इसका अभी जोड़ा नहीं बना।

"जोड़ा तो शायद बन चुका है। पर इसका साथी किसीने पकड़ लिया है।

"हाँ, ऐसा भी हो सकता है।

"तो क्या वह अब नहीं आयेगा?

"जब उसे पकड़ ही लिया तो अब वह क्या आयेगा?

आज बोधाने आप ही गहरी लम्बी साँस छोड़ी।

करवट

इस समय जब कि मैं अपने जेलके कमरेमें बैठा हुआ हूँ, मुझे केवल एक बात याद आ रही है कि गिरफ्तारीसे पहले भी मैं इसी प्रकार एक छोटेसे कमरेमें रहता था। दुनियासे मेरा सम्बन्ध मात्र इतना ही था कि मैं उसे बदल देना चाहता था। क्योंकि जीवनको सार्थक बनानेके वे आवश्यक साधन जो एक मनुष्यके नाते मुझे मिलने चाहिए थे, कुछ लोगोंकी ठेकेदारीके कारण मुझे प्राप्त न थे। लेकिन चाहने भरसे दुनिया बदल नहीं जाती और न जीवनके साधन ही प्राप्त हो जाते हैं; निष्फल भावनाकी सजलता जीवनको और भी कड़वा बना देती है। मेरा वह कमरा भी जेलके इस कमरेकी भाँति निरानन्द और सूना-सूना था, सिर्फ इतना फर्क था कि जब कभी धोबीकी वह लड़की मुस्कराती और इठलाती हुई अन्दर कदम रखती थी, तो वह कमरा, अंधेरी रातमें बिजलीके प्रकाशकी भाँति, प्रसन्नतासे भर जाता था।

उसकी चालमें विचित्र आकर्षण था। बेपरवाहीसे इधर-उधर लटकी चुनरी, नज़ाकतसे हिलते कन्धे इस आकर्षणमें जिज्ञासा पैदा कर देते थे। छोटी सी घँघरियाके नीचे बन्दके लटकते घुंघरू मधुर और सतत गीत बिखेर देते थे। जब कभी मैं उस रमणीको आते-जाते देखता और उसके पाजेबकी मधुर झङ्कार को सुनता, तो मुझे नृत्य और संगीतसे भरपूर सुखमय संसारका आभास होने लगता था।

उसकी उम्र तेरह-चौदह सालकी होगी। उसकी कुर्ती दिन-दिन तङ्ग होती जा रही थी। गहरी काली आँखोंमें किसी अलौकिक मदिराकी मस्ती झलक रही थी।

उसे देख मुझे खुद नशा होने लगता हो; यह मैंने न पहले कभी महसूस किया था और न अब करता हूँ। हाँ यह सच है कि मुझे वह अच्छी लगती थी। शायद इसका कारण यह रहा हो कि उसके साँवले गालोंसे, जिनपर कभी-कभी लम्बे-लम्बे बालोंकी ईर्षालु और आवारा लटें भी छायी रहती थी, सुर्खी इस प्रकार झलकती थी, मानो उसे ब्रह्माने स्वयं अपने हाथसे अवकाशके समय निहायत तसल्लीके साथ किसी सुन्दर संध्याकी मनोहर लालिमाका एक टुकड़ा काटकर बनाया हो। उसके विकसित यौवनमें प्रातःकालका मधुर निखार था।

मुझे उसका नाम जाननेकी बड़ी लालसा थी। पूछ लेता तो शायद गुस्ताखी होती और वह मुझे बताती भी नहीं। मैं बैठे-बैठे अनुमान लगाने लगता कि उसका नाम क्या हो सकता है। कोई ऐसा नाम होना चाहिए जिसमें चञ्चलता और आकर्षण, मधुरता और मुस्कान तथा सौन्दर्य और विकास सब उचित मात्रामें एक साथ हों। पागल, कहीं ऐसा नाम भी हो सकता है?—मैं आप ही कहता—और वह धोबियोंके घर—जिन्हें सुन्दर भावनाओंसे कोई सम्बन्ध ही नहीं! मैं यह सोच-कर चुप हो रहता। नाम जाननेकी हसरत जिस तीव्रतासे मनमें उत्पन्न हुई थी अब उसी तीव्रतासे गायब हो गयी। वास्तवमें मुझे डर लगता था कि उसके अपढ़ और असभ्य माता-पिताने उसका कोई न कोई असुन्दर और भोंडा-सा नाम रख दिया होगा।

आखिर उस नामका पता मुझे लग ही गया। मैं कई बार कपड़े लेने या देने अथवा इस बहाने उसे देखने उसके मकानपर जाया करता था। उसके घरमें वह, एक भाई, बाप और बूढ़ी दादी थी। प्रायः वह और उसकी दादी ही घरमें मिलती थी, क्योंकि बाप और भाई कपड़े धोने अथवा किसी दूसरे कामसे बाहर रहते थे। एक दिन जब मैं कपड़े लेने गया तो केवल उसकी दादी ही मौजूद थी और वह चूल्हे के पास बैठी कद्दू छील रही थी।

"मेरे कपड़े धुल गये?" मैंने पूछा।

"हाँ, बाबूजी, धुले रखे हैं। अभी देती हूँ।"

बुढ़िया हाथका काम छोड़कर उठ खड़ी हुई। मगर लाख ढूँढनेपर भी उसे कपड़े नहीं मिले। इसलिए फिर बोली, 'बाबूजी जरा ठहरो। मैं लड़कीको बुलाती हूँ, उसीको मालूम है कौनसे कपड़े कहाँ रखे हैं।'

बुढ़ियाने दरवाजेसे बाहर आकर तीखी मगर नर्म और मीठी आवाजमें पुकारा—'रामकली!'

कोई जवाब न पाकर वह फिर बोली—'रामकली! अरी रामकली!!'

बुढ़ियाने फेफड़ेका सारा जोर लगा दिया था पर अबके भी जवाब न मिलनेसे बुढ़ियाको क्रोध आ गया। उसकी भवें तन गयी। वह क्रुद्ध और तीव्र स्वरमे चिल्लायी—

"कली, कली, कली—कहा मर गयी री कल ?"

"आई दादी" एक पड़ोसके घरसे उस बालाने आवाज दी, जिसे दादी, क्रुद्ध होते हुए भी कलीसे उपमा दे रही थी, कितना अच्छा था यह नाम। इसमें तो वह सभी गुण थे जो मै सोचा करता था। मैने उसे न तो, आते देखा और न पाजेबकी मधुर झंकार ही सुनी। केवल इस कवितामय उपमा पर ही विचार करता रहा। मुझे उसके आनेका बोध उस समय हुआ जब उसकी दादी रोष भरी आंखोंसे उसे देखकर बोली—

"मैं कली कली कहती थक गई। तू सुनती ही नहीं गधेकी जोरू।"

उफ! कितनी बड़ी गाली दी इस बूढ़ी चुड़ैलने। जिस कली पर भौरा बैठते झिझकता है, उस पर पत्थर फेंकते उसका दिल तनिक भी न पसीजा। परन्तु यह केवल गाली ही न थी। इसके भोंड़े स्वरमें सत्य झॉक रहा था। क्योंकि इनकी बिरादरीमें नित्य होनेवाले अनमेल विवाहोंसे अनुमान लगाया जा सकता था कि इस नवविकसित बालाको शीघ्र ही उससे दुगनी तिगनी उम्रके किसी ऐसे मर्दसे ब्याह दिया जायेगा जिसका काम मैले-कुचैले कपड़ोंकी गठरी उठाकर घाट पर ले जाना और वहाँसे धोकर फिर वापस उठा लाना और फिर उन कपड़ोकी गठरी लादे लादे लोगोंकी कोठियों पर बांटते फिरना होगा। क्या वह उसकी मधुरता और कोमलता और सुषमाका मूल्य समझ सकेगा ?

शायद कली भी इस सत्यको समझती थी क्योकि उसने बुढ़ियाकी गालीका कोई उत्तर न दिया। वह गर्दन झुकाये चुपचाप खड़ी रही और दाहिने पाँवके अँगूठेसे बायाँ पाँव खुजलाने लगी। उसका ख्याल था की बुढ़िया दो-चार गालियॉ और देगी, मगर ऐसा नहीं हुआ। वह बोली—

"बाबूजीके कपड़े कहाँ रखे हैं ? मुझे तो मिले ही नहीं। ढूँढ़कर इन्हें दे।"

"बुढ़िया फिर अपने काममें लग गयी और कली कपड़ोंकी मेजके पास आयी। उसने बिना किसी असमंजसके ऊपरसे तीन-चार तहें उठाकर एक तरफ रख दी और उनके नीचेके कपड़े मुझे थमाते हुए इस प्रकार मेरी ओर देखा, गोया कह रही हो—मुझे यह गाली तुम्हींने दिलायी है।

उसे क्या मालूम कि गाली देनेवाली बुढ़िया अगर उसकी दादी न होती तो मैं उसका गला घोट देता।

(२)

मेरे कमरेके पास ही एक सरदार रहता था। उसने चैखोवके इस कथनानुसार कि यदि प्रत्येक मनुष्य जमीनके उस टुकड़ेको जो उसकी अपनी सम्पत्ति है, खूबसूरत बनानेमें अपनी तमाम कोशिश खर्च कर दे तो यह संसार कितना सुन्दर दीखने लगे—सामनेके आँगनमें पम्पके पास एक क्यारी बनाकर दो केलेके पेड, एक चमेलीका बूटा और थोड़ी सब्जी लगा रखी थी। चमेलीके बूटे पर अब कलियाँ फूट रही थी। पहले मुझे रामकलीको स्वयं देखकर ही उसकी याद आती थी अब इन कलियोंको देखकर भी आ जाती थी। और मै इस चमेलीके बूटे पर दृष्टि जमाये सोचा करता था—

"उसका नाम चमेली ही क्यों न हुआ जिसपर बहुतसी कलियाँ लगती हैं ?"

"नहीं !" जवाब मिलता, "कली ही अच्छी है। चमेली पर तो पतझड़ आता है, जब वह बिना कलियों और पत्तोंके रह जाती है।"

"कली पर क्या पतझड़ नहीं आता ? और वह कौनसा......"

उसपर भी पतझड़ आयेगा यह ख्याल ही मेरे लिये बड़ा कठिन था, इसलिए मैं सोचना बन्द कर देता।

रामकली या केवल कली एक दिन जब मुझसे मैले कपड़े लेने आई थी तो मैं एक तरफ खड़ा एक आदमीसे बाते कर रहा था। उधरसे निबट कर जब उसे देखा तो वह उसी बूटेकी कलियाँ तोड़-तोड़ कर आँचलमें भर रही थी।

"अहा ! कच्ची कलियाँ तोड़ रही हो। सरदार मारेगा।"

"कौन सरदार ?" उसने एक कलीको तोड़ते हुए पूछा।"

"वही जो यहाँ रहता है।" मैने सरदारके कमरेकी तरफ इशारा किया।

"ऊँ, बड़ा आया है मारनेवाला। तुम डरते हो तो न तोड़ो। मैं तो किसी सरदारसे नहीं डरती।" उसने कहा और हाथकी कलियाँ मुझपर फेक कर मुस्करा दी।

वह दिन-दिन इस प्रकार मुझसे खुलती जा रही थी कि उन्हीं दिनो धुलाईके पैसे मेरे जिम्मे बाकी रहने लगे। मेरी आमदनीके साधन वैसे ही सीमित और संकुचित थे। लेकिन उस समय तो मै विशेष तंग था। प्राय ऐसा हो जाता था और ऐसी दशामें मैं सुविधाके साथ महीने दो महीनेके दाम इकट्ठे चुका देता था। कलीके घरवाले इस बातको जानते थे इसलिए वे मुझसे खुद कभी धुलाई न माँगते थे। मगर कलीने तो इसे शगल बना लिया। वह नित्य-प्रति पैसोंका तकाजा लेकर आ जाती और कहती—

"दादीने कहा है, हमारे पैसे दे दो।"

"मेरे पास अभी पैसे नहीं हैं।" मै उसे टालनेके ख्यालसे हँसकर कहता। लेकिन वह दरवाजे पर खड़ी स-बल कहती—

"हैं क्यों नहीं। मै तो लेकर जाऊँगी।"

"लोगी कैसे ? जब मैं कहता हूँ कि मेरे पास पैसे नहीं हैं।"

"वाहजी ! यह किस तरह हो सकता है कि तुम्हारे पास भी पैसे न हों।"

उसके भोलेपन पर मुझे हँसी तो आती लेकिन मै उसे जब्त करके उत्तर देता—

"कली ! मै पैसे बनाता तो हूँ नही'

"बनाते नही तो और क्या करते हो?"

"क्या करता हूँ। जो सब लोग करते हैं।" मैने उसकी ओर देखा और फिर कहा—"काम करता हूँ तो उसके पैसे लेता हूँ। जब काम नहीं मिला तो पैसे भी नहीं।

"क्या काम करते हो तुम ?" वह वाकई जानना चाहती थी।

"लिखनेका काम करता हूँ। छापनेवाले मुझसे किताबें लिखवाते हैं और पैसे देते हैं।"

"फिर तुम बैठकर लिखते ही रहा करो न।"

उसने यह बात शायद इसलिये कही थी कि वह मुझे अकसर लिखते देखा करती थी। मगर मैंने उत्तर दिया। "पर आप ही लिखते रहनेसे क्या बनता है ? अगर तुम्हे कोई कपडे धोनेको न दे तो क्या अपने ही कपड़े धोनेसे पैसे मिल सकते हैं।"

यदि मै उसे यह समझाता कि इस महाजनी युगमें हरेक काम एक विशेष वर्ग की इच्छाके अनुसार करना पड़ता है तब कही जाकर पैसेका मुंह देखना नसीब होता है, तो वह इतना सहज न समझ सकती जितना कि कपड़ोंका उदाहरण सामने लानेसे समझ गयी। अब उसने बातका रुख बदल कर कहा—"अच्छा सच कहते हो कि इस समय तुम्हारे पास एक भी पैसा नही ?"

मैंने जेबको उलटकर चॉदीका एक टुकड़ा निकाला और उसे हथेली पर रखकर कहा—"यह एक चवन्नी है।"

"लाओ यही दे दो।"

"शामको खाऊँगा क्या ?"

"और हम क्या खायेंगे ? हमें भी तो आटा खरीदना है।"

मैंने चवन्नी उसके सामने रख दी और इशारा किया—ले जाओ। लेकिन वह मुस्करायी और भाग गयी। उस चमकती हुई चवन्नीके साथ कमरेमें सुगन्ध छोड़ गयी।

मेरा विचार था कि अब कली पैसोंका तकाजा करने नहीं आयेगी। लेकिन वह दूसरे ही दिन फिर आ गयी और आते ही बोली:—

"दादीने कहा है हमारे पैसे दे दो।"

"मेरे पास पैसे नहीं है।" मैंने बिना मुस्काये उत्तर दिया, लेकिन मेरा यह ढङ्ग उसे पसन्द नहीं आया। वह शायद पैसे मॉगनेकी अपेक्षा मुझे मुस्कराते देखने आयी थी। मनोहर नेत्रोमें चञ्चलता भर कर वह बोली.—

"पैसे नहीं हैं तो कपड़े भी मत धुलाया करो।"

"अच्छा, अब नहीं धुलाऊँगा।" मै मुस्कराया।

"और धुलाना जरूरी है तो हम मुफ्त धो दिया करेंगे।"

"मुफ्त ?"

"हाँ।" उसने एक टक मेरी ओर देखते हुए स्थिर और स्पष्ट स्वरमें कहा।

"भला क्यूँ ?" मैंने विनोद भावसे पूछा।

अब इस "क्यूँ" का वह क्या जवाब देती। लजाकर भाग गयी।

दूसरे दिन मैं गिरफ्तार हो गया। अब कली न कपड़ोको आती है और न पैसोंका तकाजा करने। उसकी सुन्दर मुखाकृति और भोली बातें, प्रायः याद आ जाती हैं और मै अपने आपसे पूछता हूँ·—

"क्या वह मुझे प्यार करती थी ?"

उत्तर मिलता है —

"नहीं, उसके मदभरे अगोमें यौवन करवट ले रहा था और वह तुमपर हाव-भावकी आजमायश कर रही थी।"

"हाँ" और "नहीं" का समाप्त न होनेवाला सिलसिला चल पड़ता है। हेगेल के सिद्धान्तानुसार एक विचारसे दूसरा विचार जन्म लेता है। मैं एक दार्शनिक की भाँति सोचने लगता हूँ कि कभी हमारा सामूहिक जीवन भी करवट लेगा—एक बड़ी करवट !

गाठिया

जब कोई घूमने या सैर करनेवाला आकर यह कहता है कि मुझे ये कपड़े डबल रेट पर धोकर कल ही लौटा दो क्योंकि मैं दिल्ली में सिर्फ दो दिन के लिए ही ठहर सकता हूँ, इसके बाद अमुक स्थान पर सैर के लिए जा रहा हूँ, तो सनशाइन लाँड्रीका यह भारी भरकम साइनबोर्ड भीमकाय देवकी भाँति सीनेपर नाचने लगता है। मुझे अपने स्वतन्त्र और स्वच्छन्द जीवन का वह समय स्मरण हो आता है, जब लोहेकी दो इस्तरियाँ और पीतलका एक टब मेरी जीवनकी पूँजी थे। मैं उस समय खानाबदोशोंकी तरह हिन्दुस्तानके कोने कोने में घूमता फिरता था। कभी लाहौर, कभी पेशावर, कभी पटना और मुरादाबाद। कभी किसी बन्दरगाहपर, कभी किसी पहाड़पर। मेरी दुनिया, मेरी उमंगे और मेरे वलवले विस्तृत थे और उसी अनुपातसे मेरी प्रसन्नता भी विस्तृत और अपार थी। इस प्रसन्नताके हिस्सेदार भी मेरी ही तरहके वे आवारा नौजवान होते थे, जो मुझे देशके प्रत्येक भाग और प्रत्येक स्थानपर मिल जाते थे। वे मेरे साथ काम करते खेलते-खाते और हँसी खुशीसे जीवन बिताते। जब रहते रहते मन भर जाता, तो एक दिन अकस्मात, शायद घूमनेकी प्रबल भावनासे विवश होकर अथवा किसी और कारण हम अपने सुखी जीवनको तज देते और अपने जवान सीनों में निष्कपट और स्वतन्त्र जीवनका मधुर सन्देश लिए देशकी भिन्न भिन्न दिशाओंमें फैल जाते।

पिताजी अकसर कहा करते, "कम्बख्त, तेरे पाँवमें चक्कर है चक्कर!"

हाँ कभी पाँवमें वाक़ई चक्कर था। लेकिन फिरते फिरते वह चक्कर ऐसा घिसा है कि घूमनेकी प्रबल भावना चाँदनी चौकमें सीमित होकर रह गयी है। घंटाघर, शाही मसजिद और लालकिला मेरी दुनियाके अजायबात हैं, जिन्हें मै अतीतकी याद आनेपर हसरतभरी निगाहसे देख लेता हूँ। और अधिक जोर मारा तो जमुनाके घाट तक हो आता हूँ। पिताजी मर चुके हैं। लेकिन जिस श्रेष्ठ जीवनसे वह मेरा सम्बन्ध जोड़ गये हैं, मैं उसे जीवन-दंड समझते हुए भी उससे पीछा नहीं छुडा सकता। पत्नी है, बच्चे हैं, मेरी ढली हुई जवानी है और हैं ये गर्म गर्म लोहेकी लाल आँखो वाली इसतरियाँ, जिन्हें मेरे किरायेके आदमी बे जान मशीनोंकी तरह चलाते हैं। मैं जैसे जैसे कपड़ोंकी सलवटें निकलती देखता हूँ, मेरे चेहरे, शरीर और आत्माकी सलवटें गहरी होती जाती हैं। मै रुपया कमाता हूँ पर ऐसा महसूस करता हूँ, कि जीवनका सर्वस्व हार बैठा हूँ। मुझे इस कामसे न आनन्द प्राप्त होता है और न शान्ति। कई बार इतना चल जाता हूँ कि मेरी आत्माका जोड़ जोड दर्द करने लगता है। उस समय, एक जन्म-रोगीकी तरह मै इस दर्दका इलाज न पाकर बीते हुए स्वतन्त्र-जीवनकी कल्पना करने लगता हूँ। शहरो और बन्दरगाहोके दृश्य और मित्रों की मोहक सूरतें एक-एक करके कल्पनापट पर आने लगती हैं। अन्तमे कश्मीरकी सुन्दर वादी अपने विशाल पर्वतों, निर्मल झरनों, झीलों और सब्ज़ी बाज़ारोंके साथ दिमागमें उतर आती है। इसी सुन्दर वादीमे मैने एक स्वप्न देखा था—मधुर और मादक स्वप्न! उस स्वप्नकी रमणीके पीछे भागता हुआ मै यहाँ तक आ पहुँचा हूँ। जब उसे पकड़नेके लिये हाथ बढाया, वह रूपराशि, सुन्दरगात जादूगरनी मुझे ठग कर आप तो न जाने किधर निकल गयी और मेरे हाथ आयी 'नौ मन की धोबन' जिसे मैं अपनी पत्नी कहने पर मजबूर हूँ। इसमें न कोई सुन्दरता है, न कोमलता और न आकर्षण। ऐसा मालूम होता है कि ब्रह्माने जब उसे बनाया तो समस्त सूक्ष्म निधियाँ खर्च हो चुकी थीं, उसके पास जो स्थूल वस्तु शेष रह गयी थी, उसे इकट्ठा करके यह भारी भरकम देह तैयार कर दी। मैं उसे देखता हूँ और सर पीट लेता हूँ और वह अन्तिम घटना, जिसने मुझे इस नरक-कुण्ड में ला फेंका रह रह कर कचोके दिया करती है।

*　　　*　　　*

वैसे तो मैं कई बार काश्मीर हो आया था। गुलमर्ग और पहलगाममें अपनी सफरी लांड्री कायम करके दो दो तीन तीन महीने गुजार चुका था। इस बार मै श्रीनगरमें ठहरा और डायमंड लाड्रीका जो एक छोटा-सा कमरा किराये पर लेकर ग्रीष्मकालके लिये अस्थायी तौर पर खोली गयी थी, प्रोपराइटर बना। थोड़े ही

दिनोंमें काम भी माकूल मिलने लगा और चन्द नौजवान साथी भी मिल गये। इनमें से दो नौवजवान तो मुसाफिरोंमें मिल गये, जो करीब ही आर्यसमाज मन्दिरमें ठहरे हुये थे—चन्दर और गौरी। उनमें आवारगीके सब गुण मौजूद थे। हाँ, वे कपड़े धोना नहीं जानते थे और इसकी ज़रूरत भी न थी, क्योंकि यह काम मैं हरेक नौजवानको खुद सिखा सकता था। उनके अतिरिक्त दो नौजवान मुगली और सलीम ऐसे भी मिल गये जो पहिले ही से अमीर आदमियोंकी कोठीमें कपड़े धोनेका काम करते थे। सामान सब अमीरोंका होता था। उनका काम मात्र कपड़े धोना और इसतरी करना होता था। इस तरह उन्हें मेहनत अधिक करनी पड़ती और मजूरी कम मिलती है। लेकिन वे मेहनत बेचने पर मजबूर थे। अब मेरे साथ परिचय होनेपर उन्होंने अमीरोंकी मजूरी करना छोड़ दिया और बराबरके हिस्सेदार बनकर मेरी लाण्ड्रीमें शामिल हो गये।

इस प्रकार हम पाँच आदमियोंने सामूहिक जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया चन्दर अच्छे स्वभाव और अच्छी तबियतका मनुष्य था और अच्छा लिबास पह-नता था। मैं थोड़े ही दिनोंमें उसके साहस, उदारता और सहानुभूतिका कायल हो गया। और मेरे मनमें उसके लिये सम्मान और प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। वह दिन भर हमारे साथ काम करता और शाम को जब हम सैरको निकलते वह अपना सूट पहनता; जो सिर्फ उसी समय वह पहनता था। सूट कीमती तो था ही। जाने वह इसे कितने दिन से पहन रहा था फिर भी इस सावधानीसे रखता था कि उस पर दाग-धब्बे और पुरानेपनका निशान तक न था। एकबार प्रेल खेलकर उसे काफी पैसे हाथ लगे थे, उस समय यह सूट सिलवाया था। मगर इस सूटके नीचे जो कमीज पहनी जाती, अनेक स्थान से फटी होती थी। हाँ, इसके जो भाग सूट से बाहर रहते थे जिनपर लोगोंकी निगाह पड़नेकी सम्भावना रहती थी वे साफ सुथरे, स्वच्छ और साबुत होते थे। कुष्ठके दाग अगर कोटके अन्दर हों तो आदमी कोढ़ी नहीं कहलाता। जब वह यह सूट पहनकर, घुंघराले बाल बनाकर और सुनहरा चश्मा लगाकर निकलता तो किसी रियासत का राजकुमार नजर आता था। दरअसल उसे राजकुमार बनने की आवश्यकता भी थी क्योंकि उसका शगल था हाउस बोटों और होटलों में जाकर अमीरजादो के साथ प्रेल खेलना, जो अपने से कम पोजीशनवाले लोगोंसे मिलना-बैठना अपमान समझते हैं।

चन्दर की प्रेलकी आमदनी हमारी लांड्रीकी आमदनीसे कई गुना अधिक होती थी। जहाँ तक हार होनेका ताल्लुक है वह रुपया दो रुपया से अधिक हो ऐसा कोई अवसर मुझे तो याद नहीं। उसकी यह कामयाबी देखकर मै चकित रह जाता और

पूछता—चन्दर; समझमें नही आता कि तुम प्रेल खेलते हो या जेब कतरते हो ?

वह इसपर जवाब देता—बस यही समझ लो कि जेब कतरता हूँ। इन अमीरो को हराना भी क्या कुछ कठिन बात है ? तुम्हे एक उसूल बताता हूँ जो अस्सी फी-सदी लोगों पर घटित होता है कि जिन लोगोंकी जेबें सिक्कों से भरी रहती हैं, उनके दिमाग अक्लसे खाली होते हैं ।

मुमकिन है कि चन्दर की बात किसी को बुरी लगे लेकिन मुझे बहुत पसन्द आती और वह मुझे बताया करता कि मै उन लोगोंसे प्रेल खेलता हूँ जो हार जीतके लिए नही बल्कि रुपया खर्च करने के लिए खेलते हैं । अगर संयोगवश वे कभी आठ दस आने जीत भी जाते हैं तो इतने प्रसन्न होते हैं कि तत्काल ह्विस्की का आर्डर कर देते हैं जिसका अभिप्राय अपनी सूझ-बूझ और खेल में प्रखर बुद्धि की दाद पाना होता है। और अगर बीस-तीस रुपया दे बैठे, तो पराजयका विक्षोभ भी शराब पीकर अथवा किसी कामिनीके पहलूमें बैठकर भुला देते हैं । उन्हें रुपया खर्च करनेसे मतलब है और वह दोनों प्रकार हो जाता है ।

गौरीको सिनेमा देखनेका शौक था और वह शौक इतना बढा हुआ था, कि हर नया खेल देख आना वह अपना धार्मिक कर्तव्य समझता था । और जो खेल अधिक पसन्द आता उसे दसों बार देख आने पर भी उसका जी न भरता । उसे ऐक्टर, ऐक्ट्रेसोंके नाम, गानेके सुरताल और ऐक्टिंगके ढंग भली भाँति याद थे। कभी-कभी उसे छेड़नेके लिए हम उसकी दिलपसद फिल्मको निकम्मा और उसके प्रिय ऐक्टर अथवा ऐक्ट्रसके गानेको खराब कह देते थे । वह सुनते ही भड़क उठता और झट कहता—,"तुम्हे इन बातोंकी तमीज ही क्या है ।" इसके बाद फिल्मकी खूबियाँ, ऐक्टिंग और सगीत-कला पर अच्छा-खासा जोशसे भरा भाषण हो जाता। जिसे सुनकर कमरा कहकहोंसे गूँज उठता और कहीं उसपर हमारी आलोचनाका भेद खुलता । खुशीमे हम उससे एक फिल्मी गाना सुनानेकी फरमाइश करते ।

मुगलीको अपना कोई विशेष शौक न था । वह गौरीके साथ सिनेमा देख आता, कभी मेरे साथ घूम फिर कर जी बहलाता और कभी कभी सलीमके साथ औरते और नवयौवना तितलियाँ देखने चला जाता । हाँ, सलीमको नारी रूपका मोह उतना ही था जितना कि भौरे को फूलकी सुगंधसे होता है । जिस प्रकार भौरा फूल को सूँघ कर ही सन्तुष्ट रहता है, सलीम औरतको देख लेना ही काफी समझता था । यह दूसरी बात है कि अगर कहीं सहजमें पहुँच हो जाए, तो उसे भी बुरा ख़्याल नहीं करता था ।

लाड्रीका काम हम चारों ही करते थे । मगर वहाँ रहनेवालोंकी तादाद बहुत जल्द बढ़ गयी । प्रकाश एक नौसिखिया आर्टिस्ट था। वह एक फोटोग्राफ़रकी दूकान

पर काम सीख रहा था। उसे बीस रुपया महीना मिलता था। इसी तरह एक और नौजवान रत्नदेव किसी ट्रान्स्पोर्ट कम्पनीमें पचीस रु महीना पर क्लर्की करता था। ये दोनों भी हमारे ही पास रहने लगे। और इनके बाद जो आठवाँ आदमी हमारे साथ शामिल हुआ, उसका नाम तो अब याद नहीं। लेकिन हम उसे लीलू कहते थे, क्योंकि उसके गहरे काले रंगसे नीलाहट झलकती थी। उसके तीखे नक्श और बड़ी बड़ी आँखोंको देखकर उनके सुन्दर होनेका एहसास होता था। पहले वह किसी मित्रके पास कोठीमें रहता था। दरअसल मित्रता-वित्रता कुछ न थी। यहीं आकर, परिचय हुआ था और उसने लीलूको अपने पास रख लिया था। लेकिन वह इस जान-पहचानके रिश्तेको अधिक देर तक निबाह न न सका। स्पष्ट तो कहता नहीं था, लेकिन चाहता यह था कि वह किसी न किसी तरह वहाँसे चला जाये। एक दिन बातों ही बातोंमें झगड़ा हो गया और लीलूने मुझे बताया कि अब वह वहाँ रह कर अपमानित होना नहीं चाहता। कोई भी मनुष्य मान-रक्षाके लिए लड़े, तो मैं उसे प्रशंसनीय दृष्टिसे देखता और कोई भी मनुष्य जड़-जीवनके विरुद्ध विद्रोह करे, तो मैं उसे सहायता देनेके लिए तैयार रहता था।

लीलू भी हमारे साथ रहने लगा।

शामको जब सब लोग सैरको जाते, तब लीलू भी जाता। वैसे वह सारा दिन ही घूमता रहता था। उसे हमारे लाड्रीके कामसे कोई दिलचस्पी न थी। वह टाइपिस्टसे मोटर-ड्राइवर तक मुख्तलिफ जगहपर मुख्तलिफ काम कर चुका था। मगर अपनी आवारा तबीयतके कारण किसी एक जगह भी जमकर न रह सका था। अब वह कश्मीरकी सैरको आया था और समझता था कि यहाँ भी रोटी कमानेका कोई न कोई साधन निकल आएगा। अगर काम न मिला, तो भी गुजारा करनेका ढग तो वह खूब जानता है। पहले डेढ दो महीने वह मुस्लिम होटल पर खाना उधार खाता रहा। जब पैसोंका तकाजा बढ़ने लगा, तो एक हिन्दू होटलमें जा डटा, और अब एक सिख होटल पर कृपा दृष्टि की। अगर कोई पूछ लेता कि ये होटलोंके मैनेजर तुम्हारा विश्वास किस तरह कर लेते हैं, तो वह बड़े गर्व और आत्मविश्वाससे कहता—"विश्वास जमाने की कला मैं जानता हूँ।"

हाँ, तो शाम की सैरका जिक्र चल रहा था। लीलू प्रत्येक दिन नये लिबासमें निकलना पसन्द करता। कभी सलीम की तुर्की टोपी पहनकर उसका मोतिये रंगका तहबन्द पहन लेता और अपने कपड़े सलीमको दे देता। अगर तबादला मुगलीके साथ होता तो तो लीलू उसकी सलवार और शमलेदार पगड़ी पहने दीख पड़ता और कभी ग्राहकोंके कपड़े पड़े होते उनमेंसे पहन जाता। वह अकसर मुगली और सलीमके साथ गुरुकुल आर्यसमाज मन्दिरके सामने जो खुला मैदान पड़ा है, उसमें घूमा करता

और कहता,—"आओ यार, नौरोजका मेला देखें ।"

वास्तवमें वह मेला नौरोजके लिए नहीं हर रोज भरता था। कोठियो और मुहल्ले की औरतें वहाँ सैर करने आया करती थी। पास लड़कियोंका एक बोर्डिंग हाउस था। वे भी टोलियाँ बाँध कर सैरके लिए निकला करती थी। सलीम, मुगली और लीलू इस मैदान की चहल पहल देखते और घूम फिर कर दिलका दाह बुझाया करते थे। लीलू की कोशिश यह होती थी कि वह ज्यादासे ज्यादा लड़कियोसे आँख लड़ानेमें कामयाब हो। सलीम और मुगल इस छेड़छाड़में उसका साहस बढ़ाते और कहते,— चल, बेटा। चल जरा इस सुन्दरीसे हो जाएँ दो बातें। लीलू अद्भुत निडरतासे उसके सामने जा खड़ा होता और पूछता,—"क्यो जी, इधरसे खोमचेवाला तो नहीं गया ?"

"कौन खोमचेवाला ?"

'वही"—लीलू अजीब ढंगसे आँख दबा कर मुस्करा देता और उसके दोनों साथी ठठाकर हँस पड़ते और लीलू की इस शरारत पर वे अपने भीतर एक प्रसन्नता महसूस करते। कारण यह था कि नवविकसित लड़कियाँ उनकी ओर देखना भी पसंद न करती थी।

जब कभी फुरसत होती लीलू स्त्रीका मधुर प्रसंग छेड़ देता। पठानिनों, पंजाबिनों और यमुना पार की औरतों की भिन्न श्रेणियाँ बयान करता। फिर औरतें फाँसनेके ढंग और प्रेम और मिजाज की लम्बी कहानियाँ शुरू हो जाती। उसके कहनेका ढंग इतना रोचक और मनोहर होता था कि हम सुनते और सिर धुनते थे। "यहाँ तो औरतों की खूब बहार है"—सलीमने कहा।

"सुना तो यही था, लेकिन मैने तो अकाल ही देखा।'

"अकाल क्यो है ? तुम शामको शिकारे पर निकल जाओ और माँझीसे कहो, औरत हाजिर है।"

"वाह यार, यह भी कोई औरत है, गरीबीकी कुचली हुई, आतुर कुतांसे चिचोड़ी हुई। यह तो स्टेशनपर बिकनेवाली चायकी प्याली है जिसे पीकर थूक देने को जी चाहता है!"

हम सब खिलखिलाकर हँस पड़े और सलीम अप्रतिभ-सा हो गया। लेकिन लीलूने कहा,—"जनाब, औरतकी आँखोंमें जन्नत मुस्कराती है और वह उस वक्त नजर आती है, जब वह तुम्हें वाकई प्यार करती हो।"

उसकी बात प्राय बाजारू न रहकर इतनी उच्च हो जाती थी, कि हमारे दिलों पर नारीकी महिमा, विशेषता और मुहब्बत नक्श होकर रह जाती थी।

लीलूने एक रीछ जैसा कुत्ता पाल रखा था जिसे वह, अपने साथ लाया था। और सब बातोंकी तरह उसे कुत्तेकी भी अधिक परवाह न थी। उसके खिलाने पिलाने का ध्यान मुझे ही रहता था और शामको हवाखोरीके लिए भी उसे मैं ही साथ ले जाता था। इसलिए कुत्ता मुझसे हिल मिल गया था। परन्तु वह किसी अपरिचित को देखकर चिल्लाता और मैं 'चुप' कह देता तो वह फौरन भौंकना बंद कर देता। हम रातको उसे दरवाजे पर बाँधकर किवाड़ खुले छोड़ देते और निश्चिन्त होकर सोते रहते। किसीको अन्दर आनेकी हिम्मत न पड़ती थी।

वैसे अन्दर आनेके लिए जगह ही कहाँ रहती थी? छोटासा कमरा और हम आठ आदमी। एक दूसरेसे इतना सटकर सोते थे कि अगर कोई भीतर आना भी चाहे तो हमारे शरीरपर पाँव रखकर ही आ सकता था। दो दो बजे तक तो हम वैसे ही जागते रहते। गप्पें हाँकते, कहकहे लगाते और गौरीसे फिल्मी गाने सुनते। हमारे पिछवाड़े जो ऊँचा मकान था, उसके मालिकने एक बार शिकायत की थी कि हम उन्हें सोने नहीं देते। बात माकूल ही थी। लेकिन हमें इतनी अखरी थी कि हम सबने उसे मोटी मोटी गालियाँ कोसते हुए कहा था,—"ये लोग हमारा हँसना खेलना भी बरदाश्त नहीं करते। एक तरहसे हम सब इन बड़े पेटवालोंसे नफरत करते और उनके विरुद्ध दिलकी भड़ास निकालनेका कोई अवसर हाथ से न जाने देते थे। कारण हमें व्यक्तिगत सम्पत्ति और अपने जड़ जीवनसे चिढ़ थी और ये लोग इन चीज़ोंके सबसे बड़े पक्षपाती और संरक्षक थे। इन्हींके पूर्वज तो थे, जिन्होंने मनुष्यकी स्वच्छन्दता और स्वतन्त्रताको असभ्यता कहकर और सम्पत्तिके घृणित विचारको जन्म देकर स्थायी जीवनके नामपर सभ्यताकी डींग मारी। फल यह निकला कि हमें अपना पेट काटकर कमरेका किराया चुकाना पड़ता है।

हमारी ज़िन्दगी मजेसे गुजर रही थी कि मेरे अन्दर अकस्मात् एक परिवर्तन हुआ। मनमें एक गुदगुदी सी उठती और एक अधीर भावना सीनेमें उभरती हुई महसूस होती। मै अकेला ही दूर सुदूर खेतों और पहाड़ोंकी सैरको निकल जाता। एक बार मकईके हरे भरे खेतके किनारे एक नव विवाहित जोड़ा खड़ा था। दूल्हा दुलहनसे कह रहा था,—"देखो प्यारी, इनमें भी नर और मादा होते हैं। पौदेकी चोटीपर जो सिट्टा फटता है, उसे नर कहते हैं। उसमेंसे चूरा झड़कर नीचेके भाग पर गिरता है, तब कहीं भुट्टा जनम लेता है।"

"ऐसा"—दुलहनके कोमल कोमल ओठोंसे निकला।

मैने देखा कि उसकी आँखोंमें जन्नत मुस्करा रही थी।

वे तो सैर करते आगे निकल गये। मै धानके गाढ़े हरे खेतों, वृक्षों और इधर उधर उड़ते पक्षियोंको देखने लगा। वातावरणमें न जाने क्या जादू भरा था कि मुझे समस्त प्रकृति दो-दोके जोड़ोंमें विभक्त दीखने लगी। और मेरे मनमें यह कसक उठी कि मैं अकेला क्यों हूँ।

मैं देखता रहा। दृश्य सुन्दरसे अति सुन्दर रूप धारण करता गया। सामने गगनचुम्बी पहाड़ थे, जिनकी चोटियाँ बर्फसे ढकी थीं। बादल उनकी गोदमें अठखेलियाँ करते हुए ऊपरको उठ रहे थे। धीरे धीरे एक बादल उठा और उसने बदलते बदलते एक कोमलांगी नारीका रूप धारण कर लिया, जिसकी आँखोंमें जन्नत मुस्करा रही थी। मैंने चाहा कि दौड़कर उसे पकड़ लूँ। लेकिन वह तो प्रतिक्षण दूर दूर और ऊपर उठती जा रही थी।

अब मुझे उस नारीका ध्यान रहने लगा। अगर वह दुनियाके दूसरे छोर पर भी हो, तो मैं उसे ढूँढ़ लेना चाहता था। मैं अकेला-अकेलासा और खोया-खोयासा रहने लगा। काम और साथियोसे अरुचि बढ़ने लगी। दिनपर दिन, दिनपर दिन मेरा मिजाज रूखा और चिड़चिड़ा होता जा रहा था।

मै लीलूकी लापरवाहीकी बात पहले कह चुका हूँ। वह जो कपड़ा चाहे पहन जाता, जिसके कारण ग्राहकोंको बाज दफ़े कपड़े वादेपर नहीं मिलते थे और मुझे बुरा भला सुनना पड़ता था। इसके अतिरिक्त वह दूसरी चीज़ें भी इधर उधर फेंक देता था।, जिन्हें ढूँढना मुसीबत होती थी। और नह काममें जरा भी मदद न करता था। वह सिर्फ भारस्वरूप था। जिस प्रकारका जीवन हम बिता रहे थे, उसमें सब बातें उचित ही थीं, पर मै उससे नफ़रत करने लगा।

वह सुबह उठकर कभी बिस्तर इकट्ठा नहीं करता था। चंदर मै या कोई और साथी लपेट देता। वह 'शेव' करके सामान वहीं छोड़ जाता। हम उसे भी पोंछकर उठा देते। मगर अब मैंने साथियोंको हिदायत दे दी कि अगर वह बिस्तर खुद नहीं लपेटता तो बिछा रहने दो; अगर वह शेवका सामान नहीं उठाता, तो वहीं पड़ा रहने दो। इसके बावजूद चंदर उठा ही देता और मैं उसपर नाराज होता। यहाँ तक कि वह कुत्ता, जिसका लीलूकी लापरवाहीसे कोई सम्बन्ध न था, मुझे बुरा लगने लगा। अब मै उसे हवाखोरीके लिए न ले जाता और न उसके खानेका ध्यान रखता। उसका भौंकना तो मुझे इतना बुरा लगता कि मै उसे 'चुप' कहनेके बजाय मारने दौड़ता। मुझे लगता था कि उसके कारण ग्राहक कम आते हैं। लेकिन मुझपर कुत्तेका प्रेम बना हुआ था। कारण स्पष्ट था। जानवरका प्रेम मानव-प्रेमकी तरह घृणामें परिवर्तित होना नहीं जानता।

मेरे बदले हुए स्वभावको सब देख रहे थे, पर खामोश थे। एक दिन लीलू शेव करके उठा और सामान वहीं छोड दिया। चन्दर उसे उठाकर रखने लगा। लेकिन मैंने उसे चन्दरके हाथसे छीनकर सडकपर फेंक दिया। लीलू कहीं गया नहीं था। बाहर खडा था। उसने यह दृश्य देखा, तो बोला नहीं। चुपचाप बिखरी हुई चीजें समेटने लगा। उसने उन्हें अपने मुख्तसर बिस्तरमें रखा और उसे बगलमें दबा लिया और फिर कुत्तेकी जंजीर खोलकर चलते हुए बोला,—"जगजीत, मुझे तुमसे इस बातकी आशा न थी।"

वह जा रहा था और हम सब खामोश बैठे उसे देख रहे थे। मानो हमारी आत्माके दो टुकड़े अलग होकर जा रहे हों। कमरेमे भयानक निस्तब्धता छायी थी। मात्र लीलूके ये शब्द "मुझे तुमसे इस बातकी आशा न थी" वायुमण्डलमे गूँज रहे थे। अब जब कि वह चला गया था। मुझे अपने कियेपर ग्लानि आ रही थी और मेरे साथियोकी झुकी हुई गर्दनें इस भावनाकी कडुवाहटको तीव्र बना रही थी। एक बार चन्दरकी आँखें ऊपर उठी। मैंने देखा वे कह रही थी,—"जगजीत! तुमने अच्छा नहीं किया। तुमसे इस बातकी आशा न थी।"

सब मुझे सन्दिग्ध दृष्टिसे देखने लगे। मुझे खुद अपने आपपर विश्वास नही रहा। हमारा यह प्रसन्नतापूर्ण जीवन दो चार दिनमे ही अस्त-व्यस्त हो गया। चन्दर सलीम और गौरी मुझे अकेला छोड़कर भिन्न भिन्न दिशाओमे चले गये। उन्हीं दिनो पिताजीका पत्र आया, जिसमे लिखा था,—"बेटा जगजीत! मेरा अन्तिम समय निकट है। ईश्वरके लिए मेरी बात मानो और शादी कर लो।" पत्र पढकर विचार आया कि वही रूपवती नारी, जो बादलोंमें गुम हो गयी थी, जिसकी आँखोमें जन्नत मुस्करा रही थी और जिसका ध्यान मुझे हर समय सताया करता है, शायद मुझे मिल जाय। मै पिताजीकी जिस अभिलाषाकी चिरकाल से अवहेलना करता आया था, अब न कर सका।

दो ढाई लाख वर्ष पहले कोई नक्षत्र पृथ्वीके निकटसे गुजरा था, तो उसकी धुरा तिरछी हो गयी थी, और इस तिरछेपनने भूमिके कैरेक्टरको ऐसा एकदम बदल दिया था, कि अथाह बर्फ पड़ने लगी थी और नानाप्रकारके जीव नष्ट भ्रष्ट हो गये थे। इसी प्रकार लीलू मेरे निकट आया और मेरे जीवन धुराके कोणको बदलकर चला गया। अब मेरे जीवनका आदर्श वह नहीं रहा। समस्त अभिलाषाएँ मर चुकी हैं। और कपडे धोना, रुपया कमाना और बच्चे पालना यही काम रह गया है। शांतिका सर्वथा अभाव है। मनमे एक टीस सी उठती रहती है। कश्मीरकी तनिक याद आनेसे तड़प उठता हूँ। ऐसा महसूस होने लगता है कि पहाड़ों पर पड़ी बरफके नीचे गला जा रहा हूँ। कश्मीरकी समस्त सर्दी हवामे समा गयी है, मै इस सर्दीसे काँप उठता हूँ और अब आत्माका जोड़-जोड़ दर्द करने लगता है।

शरणागत

"सुनाओ रिसाल, क्या बता रहे थे कैलाश बाबू ?" पंडित मिलखी रामने अपनी बुजुर्गीसे सफेद बालोंपर हाथ फेरते हुए कहा।

"कुछ नहीं, उनका खत आया था, वह ला कर दिया है।" रिसालने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और फिर कहा,—"बड़े अच्छे हैं कैलाश बाबू।"

"हाँ, अच्छे तो हैं।" पण्डितजीने कुछ ऐसे स्वरमें कहा, जिससे समर्थनके बजाय विरोधका भान होता था और दूसरे वाक्यने तो उनके भावको बिल्कुल ही स्पष्ट कर दिया, वे बोले,—"लेकिन परमात्माको नहीं मानते।"

पंडितजीने इतना कहा और आगे चले गये। लेकिन उनका यह वाक्य रिसालके लिये आश्चर्यका कारण बन गया। वह खड़ा सोचने लगा कि जो आदमी परमात्माको नहीं मानता वह अच्छा कैसे हो सकता है। उसका मन यह बात स्वीकार करनेको तैयार नहीं था कि कैलाश अच्छा आदमी नहीं है।

रिसाल इक्कीस-बाइस सालका रेख-उठान नौजवान था। वह फौजमें भर्ती हो कर बर्माके मोर्चे पर लड़ने वाला था। लेकिन उसने धार्मिक प्रवृत्तियोंमे परवरिश पायी थी। किसी पशु-पक्षीको मारना तो क्या वह तो चीटी तकको कुचलना पाप समझता था। मानव-हत्याके भीषणकाड देख कर उसकी तबियत घबरा गयी और वह अवसर पाकर वहाँसे भाग आया। फौजी कानूनके अनुसार उसे इस अपराधमें दो साल सख्त कैदकी सजा हुई, अब वह कैद काट रहा था।

उसके भाग आनेका कारण यही था, वर्ना वह बुजदिल नहीं था, क्योंकि वह

जेल की मुसीबतें सन्तोष और साहसके साथ सहन करता रहा था। डर, भय या आतङ्कके कारण अपना कोई उसूल तोड़ने अथवा स्वाभिमान छोड़नेके लिये वह तैयार न था। प्रत्येक सप्ताह काम बाँटा जाता था। जेलरने एक बार उसे नाली साफ करनेका काम दिया। यह सुनकर उसका राजपूती खून खौल उठा और वह झट बोला,—" हजूर मै यह काम करनेको तैयार नहीं हूँ।"

झाड़ू देना और गन्दे पानीकी नाली साफ करना भंगियों और अछूतोंका काम समझा जाता था। आज स्वयं यह काम करके बुजुर्गोंके नामको बट्टा लगाना उसे मंजूर नहीं था, लेकिन इसे जेलके नियमों के खिलाफ समझा गया और जब तक वह नाली साफ करने को तैयार न हो, उसे कोठरीमें बन्द रखने और अठारह सेर गेहूँ प्रतिदिन पीसने का दंड दिया गया।

वह न जाने कितने दिन चक्की पीसता रहा। लेकिन उन दिनों बहुतसे कांग्रेसी भी जेलमें नजरबन्द थे। उन्हें सिर्फ इसलिए कैद रखा गया था कि सरकारको संदेह था कि वे युद्ध प्रयत्नोमे बाधा डालना चाहते हैं। उन्हें साधारण कैदियोंसे खाने-पीनेको अच्छा मिलता था और उनका काम काज करनेके लिए उनको मशक्कती दिये जाते थे। इखलाकी कैदियों को बड़ी सहूलियत रहती थी और भोजन भी अच्छा मिल जाता था। एक दिन रिसालेने कैलाश से कहा था,—"बाबूजी हमारा भी ध्यान रखना। कैलाशको उसका ध्यान था। जब उसे मालूम हुआ कि रिसाल सिंह को अकारण चक्कीमें दे दिया गया है, तो उसे रंज हुआ और कोशिश करने लगा कि किसी न किसी प्रकार उसे वहाँसे निकलवा जाए। गलत या सही जब रिसाल एक काम करनेमें शर्म मालूम करता है, तो वह नही चाहता था कि जेलर उसके स्वाभिमानको कुचल कर उससे यह काम करवाए। संयोग से उन्ही दिनों एक मशक्कती अपीलमें रिहा हो गया। कैलाश झट जेलरके पास गया। कह कर अथवा लड़ झगड़कर इस मशक्कतीकी जगह वह रिसालसिंह को ले आया।

जब कैलासने उसके लिये इतनी कोशिश की, तो रिसाल उसे बुरा किस तरह समझ लेता। फिर जब वह कॉंग्रेसियोंके पास काम करने लगा तो वह अपनी ऑखों देखा करता था कि कैलास बाबू इखलाकी कैदियोंसे भी मानव-सुलभ बर्ताव करते हैं। उन्हें प्रेमसे पास बिठाते हैं, फुर्सतके समय लिखाते-पढाते हैं, युद्ध और देश-विदेशकी बहुतसी बातें सुनाते हैं और प्राय. उनसे हँसी-मजाक भी इसप्रकार करते हैं, मानों वे भी उन्हींमेंसे एक हैं, किसी उच्च अथवा अलग संसारके रहनेवाले नही।

रिसालसिंहके मनमें भी पढनेकी इच्छा उत्पन्न हुई और कैलाससे कहा कि मेरे पास गीता है, जो जेलमें दाखिल होते समय जमा करली है, वह ला दो। कैलासने

दूसरे दिन उसे गीता ला दी, जिसे पाकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और कैलाससे पढ़ानेको कहा। कैलासने पूछा —

"कितना पढ़े हो?"

"बाबूजी पाँच जमात तक पढ़ा था, फिर स्कूल छोड़ दिया।"

"तब तो रिसाल, तुम गीता नहीं समझ सकोगे। कोई और किताब पढ़ा करो।"

दूसरे दिन कैलासने उसे एक आसान-सी पुस्तक ला दी और दोपहरके समय उसे पढ़ना आरम्भ कर दिया। रिसाल काफी हद तक इसे आपही समझ लेता था और जो बात कठिन मालूम देती थी, कैलाश उसकी व्याख्या कर देता था और रिसालको पढ़नेमें सचमुच ही आनन्द आता था।

इस प्रकार उसके हृदय-पटपर कैलाशका जो चित्र बन गया था, वह बहुत ही गौरवपूर्ण और प्रभावशाली था। वह प्रत्येक अच्छी बात उससे सम्बन्धित करनेको तैयार था और कोई भी ऐसी बात जो उसके मानको उसकी दृष्टिमें कम करती हो उसे सोचना पसन्द नहीं था। अब परमात्माको न मानना एक ऐसी बात थी जिसके लिए किसीको भी क्षमा नहीं किया जा सकता और यह एकदम नामुमकिन दीख पड़ता था कि कोई आदमी परमात्माको न माने। फिर वह किस प्रकार विश्वास करता कि इसे कैलास नहीं मानता?

पंडित मिलखीरामकी बातसे उसे धक्का लगा। वह काफी देर तक खड़ा सोचता रहा और फिर आपही आप इस प्रकार हँस दिया मानों उसे इस बातके निराधार होनेका पूर्ण विश्वास हो गया हो। लेकिन जब आँखमें कोई वस्तु पड़ जाए, तो वह मसल देने अथवा झुँझलानेसे निकलती नहीं, बल्कि अधिक पीड़ाका कारण बन जाती है। ईसी प्रकार रिसाल इस विचारको जितना अधिक निराधार समझता था, उतना ही अधिक वह उसके मस्तिष्कमें खटकने लगा, वह सोचता ही रहा और एक बार निराधार सिद्ध हो जानेपर उसकी प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। उसके श्रद्धालु हृदयकी भावनाएँ पंडितजीके विरुद्ध जाने लगीं और धीरे-धीरे उसका मन उनके प्रति ऐसी घृणासे भर गया, जो भक्तके मनमें उस समय उत्पन्न होती है, जब वह अपने देवताके सम्बन्धमें अपमानयुक्त शब्द सुनता है। उसने पंडितजीकी बातको कैलाशपर व्यर्थका लगाया गया लांछन समझा।

कैलाश सरिसके नीचे बैठा खत पढ़ रहा था। उसके एक मित्रने लिखा था,— "मैं तुम्हारे इस विचारकी प्रशंसा करता हूँ कि अगर आदमी हजार अपढ़, मूर्ख और बेसमझ इन्सानोंको अपना विचारहीन भक्त बनानेके बजाय एक मनुष्यमें मानवताका सही भाव सजग कर दे, तो मै समझता हूँ कि उसने जीवनमें कुछ काम किया है।

लेकिन दोस्त ! यह भी तो सोचो कि यह काम कितना कठिन है। तुम्हें नब्बे फी सदी लोग ऐसे मिलेंगे, जो उसी वातावरणमें रहना पसन्द करेंगे, जो उन्हें विरासतमें मिला है। जबतक उसके वातावरणको न बदला जाए, वे ऊँचा किस तरह उठ सक्ते हैं ?"

इसी समय रिसाल वहाँ आया और जब नमस्कार करके जमीनपर बैठने लगा, कैलाशने कहा,—"रिसाल ! मैंने तुम्हें कितनी दफे कहा है कि जब मेरे पास आओ तो नीचे नहीं चारपाईपर बैठा करो।"

वह कहनेसे चारपाईपर बैठ तो गया, पर उसकी आँखोंमें झिझक और संकोच था, जिसे देख कैलासके दिमागमें वे शब्द उभर आए जो उसने पहले दिन कहे थे।

"बाबूजी, हम आपके बराबर बैठते क्या अच्छे लगते हैं।" रिसालने दाँत निकालकर दीनता प्रकट की।

"इसमें अच्छे बुरेकी कौन बात है ; तुम भी हमारी ही तरह इन्सान हो, हैवान तो नहीं।"

"इन्सान इन्सानमें भी तो भेद होता। तुम देशके लिये दुख झेल रहे हो और हम सिर्फ अपने लिये कद काट रहे हैं। हम तो आपके पाँवकी धूल भी नहीं।"

रिसालसिंहने जो कुछ कहा था वही कुछ वह महसूस भी करता था। वह कैलाशके कहनेसे चारपाईपर बैठ जरूर जाता था परन्तु उसकी आत्मामें पाँवकी धूल का विचार ही अंकित रहता था। वह एक मिनटके लिये भी यह महसूस नहीं कर सकता था कि कैलाश भी उसीकी भाँति एक इन्सान है, उसका साथी है और उसके बराबर बैठनेका अधिकार उसे प्राप्त है। वह उसके बराबर बैठा हुआ भी अपने आपको नीचे, नीचे—बहुत नीचेकी सतहपर महसूस करता। उसके भीतरसे कोई वस्तु इस प्रकार इस सतहकी ओर झरती रहती, जिस प्रकार ऊँचे स्थानपर रखे हुए सुराखवाले बर्तनमेंसे पानीकीएक-एक बूँदे नीचे गिरती रहती है। कैलास यह भाव उसके चेहरेपर और उसकी आँखोंमें साफ-साफ पढ़ सकता था और इस भावको भुलानेके लिये कैलाश हमेशा ईधर-उधरकी बात छेड़ा करता था। अब वह पत्रमें उलझा होनेके कारण कुछ विशेष बात तो सोच नहीं सका, वैसे ही बोला,—

"सरिसका दरख़्त तो तुम्हारे इलाकेमें भी होता होगा।"

"जी हाँ बाबूजी, बहुत होते हैं।" उसे याद आया कि उनके खेतमें सरिसके दो वृक्ष थे और उनके नीचे वे बैल बाँधा करते थे। यों अकस्मात घरका विचार आ जानेसे उसकी आत्मामें किसी सुखद स्मृतिने करवट ली और कैलाशने देखा कि हीनताका खयाल एक कोमल भावनाने ले लिया है। उसने सोचा कि रिसाल-

किसानका बेटा है और वृक्षोंका किसानके जीवनमें प्रिय स्थान है। फिर वह उसके जिक्रसे प्रसन्न क्यों न हो ? वह फिर बोला,—"इसके पत्ते अब तो खुले हैं, लेकिन सूरज छिपते ही बन्द हो जाते हैं।"

सरिसके पत्ते सूर्यास्तके पश्चात् बंद हो जाते हैं, यह बात रिसाल जानता तो था कि कैलासके लिए वह बात जितनी ही विचित्र और बड़ी थी, उसके लिये उतनी ही साधारण और तुच्छ थी। ऐसी अनेकों बातें होती रहती हैं। वह उनका जिक्र कर देना भी जरूरी नहीं समझता। लेकिन अब कैलाशकी बातमें बात मिलाना तो आवश्यक था।

"जी हाँ, भगवानके खेल हैं सब।" उसने सदियों पुरानी बात दुहरायी और उसका मुँह विशेष प्रकारसे अध खुला रह गया।

कैलाशको यह मानसिक दासताका चिह्न दीख पड़ा और वह गम्भीर मुद्रासे कुछ सोचने लगा। उसके चेहरेपर उदास-उदास सलवटें प्रकट हुईं। उन्हें देख रिसाल सिंहके मनमें वही शङ्का उभर आयी, जो थोड़ी देर पहले पंडित मिलखीरामने उत्पन्न की थी। वह कैलाशसे पूछ लेना चाहता था, लेकिन उसका सवाल शब्दोंका रूप धारण नहीं कर सका।

"हाँ,हाँ, कहो! क्या कहना चाहते हो।" कैलाशने उसके चेहरेकी ओर देखते हुए कहा। इससे रिसाल सिंह उत्साहित हुआ। वह बोला, —

"सुना है, आप परमात्माको नहीं मानते।"

"कौन कहता है ?"

"कोई भी हो, आप बतावें कि मानते हैं कि नहीं।"

कैलाशने प्रश्नकी पृष्ठभूमिपर विचार किया और रिसालके चेहरेपर मर्मभेदी दृष्टि डालकर वह बोला,—"तुम्हीं सोचकर फैसला करो कि मैं मानता हूँ या नहीं।"

रिसाल समझ नहीं सका कि कैलाश कन्नी काट रहा है। उसने स्वभाव सुलभ ज्ञानसे उत्तर दिया,—"मैं तो समझता हूँ कि संसारमें कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो परमात्माको न मानता हो।"

जो आदमी इस कद्र निरीह प्रकृतिका हो, कैलाश उसके विश्वासको क्यों आहत करता ? वह सुन कर मुस्करा दिया—एक उल्लास-उत्पादक मुस्कराहट!

रिसाल सिंहभी उसके उत्तरमें मुस्करा दिया। बातचीतका सिलसिला तो यहीं खत्म हो गया और कैलाश दोबारा पत्र पढ़ने लगा। लेकिन रिसाल सिंह जब वहाँसे चला, तो उसके मनका बोझ किसी प्रकार भी हल्का नहीं हुआ, बल्कि वह और भी उलझनमें पड़गया। कैलाश अगर इस मधुर मुस्कानकी अपेक्षा यह कह देता,—

"हाँ रिसाल ! मै भी परमात्माको मानता हूँ।" तो उसकी सब शंकाएँ दूर हो, जाती। स्वयं सोचकर फैसला करनेके बजाय उसे झूठ स्वीकार कर लेना बहुत सहज था।

उस समय तो वह जाकर काममे लग गया और जब रातको निश्चिन्त हुआ, तो वह बहुत थक गया था। वह दूसरे कैदियोके साथ जाकर बराकमे सो गया। सुबह उठा तो फिर वही परेशानी थी, क्योकि आँख खुलनेसे पहले उसने कैलाशको स्वप्नमें देखा था और उससे पूछा था,—"सुना है आप परपात्माको नहीं मानते।" कैलाशने सीधी तरह जवाब देनेके बजाय फिर मुस्करा दिया था। अब वह मुस्कराहट उसके मनमें यह सन्देह उत्पन्न कर रही थी कि उसने बातको गोलमोल क्यों रहने दिया।

सुबह जब पण्डित मिलखीराम स्नान आदिसे फुर्सत पा लेते थे तो रिसाल सिंह उनके लिए दीवारके पास चारपाई बिछा देता था जहाँ बैठकर वे हुक्का पिया करते थे। आज चारपाई बिछा कर लौटनेके बजाय वहाँ ठहर गया और इस प्रकार पण्डितजीकी ओर देखने लगा, मानो कुछ पूछना चाहता हो। पण्डितजीने उसे बैठनेका संकेत किया और वह उनके जूतोके निकट धरतीपर बैठ गया।

"हाँ, क्या कहना है? कोई तकलीफ है यहाँ तुम्हें?" पण्डितजीने पूछा।

"जी नहीं, आप लोगोकी दयासे तकलीफ तो कोई नही।" रिसालने जवाब दिया और फिर घबराहट छिपानेके लिए जमीनपर उँगलीसे जल्दी जल्दी लकीरें बनाते हुए कहा,—"आप कहते हैं कि कैलाश बाबू परमात्माको नही मानते।"

"हाँ, नही मानते। यह तो सच है।" उन्होंने इत्मीनानसे कहा और हुक्केका एक कश लगा कर धीरे-धीरे धुआँ ऊपरकी ओर छोड़ने लगे। रिसाल उनकी ओर देखे बिना ही बदस्तूर लकीरें बनाता रहा।

"और तुम क्या कहते हो कि वे मानते हैं?"

"नही"—रिसाल सिंहने एक बार उन्हें देखा और फिर गर्दन झुकाकर कहा,—"मैंने कैलाश बाबूसे पूछा था, उन्होंने कुछ बताया नही।"

"हूँ।" पण्डितजीने फिर उसी प्रकार कश लगाकर धुआँ छोड़ा और वे बोले,—"इसमे कुछ पूछनेकी जरूरत है? जब वे कहते हैं कि सब आदमी बराबर हैं, तो आप ही परमात्माको नही मानते।"

रिसाल सिंहने सब आदमी बराबर होनेकी बात कई बार कैलाशसे सुनी थी और उसे इसमें कोई बुराई नजर न आती थी, बल्कि वह सुनकर खुश होता था। अब इससे पण्डितजी जो बात सिद्ध करना चाहते थे, वह उसकी समझमें नहीं आयी। इसीलिए पण्डितजीने व्याख्या करते हुए फिर कहा,—"तुम देखो, जब परमात्माने

यह पाँचों उंगलियाँ एक-सी नही बनायी, तो सब आदमी कैसे बराबर हो सकते हैं। हमारे शास्त्रोने चार वर्ण बनाये हैं, तो उन्होंने झूठ तो नहीं बना दिया। तुम शूद्रको ब्राह्मण तो नही कह सकते? और तुम्हारी बुद्धि और हमारी बुद्धि एक नही हो सकती।"

"नही हजूर, हम तो आपके पॉवकी धूल हैं।"

पण्डितजी बड़े अनुभवी और अधिक उम्रके आदमी थे। उन्हें हरवक्त एक ऐसे आदमीकी जरूरत महसूस होती थी, जो केवल उन्हींका काम विशेष ध्यानसे करे। हुक्का भरे, मुट्ठी लगाया करे और दूसरी छोटी मोटी जरूरतें बिना कहे पूरी कर दे। जो आदमी अपीलमें रिहा होकर चला गया, पहले यह काम वह करता था। उसके स्थान पर रिसाल आया, तो उन्होंने देखा कि वह भी कैलाशके चक्करमें पड़ा हुआ था और कैलाश वह मनुष्य था, जो मशक्कतीको किसी कामका न रहने देता था। वह न जाने क्या पढाता था कि उसकी हवा ही बिगड़ जाती थी। वे छोटे-छोटे काम करना अपमानजनक समझने लगते थे और नजरबंदोंके बराबर चारपाई-पर बैठना अपना अधिकार समझते थे। उन्हें यह खयाल ही न रहता था कि हम मुजरिम हैं, अपराधी हैं, किसी प्रकार भी देशभक्तोंके बराबर नहीं हो सकते। अगर रिसाल सिंह भी इसी धारामें बह जाता, यह तो पण्डितजीके लिए बड़ा मुश्किल हो जाता। वे दो तीन दिन तक उसकी प्रकृतिका अध्ययन करते रहे थे। उन्होंने उसे कैलाशसे विमुख करनेके लिए ही यह बात कही थी और अब वे देख रहे थे कि उनकी नीति सफल हुई है। चुनांचे लोहेको गर्म देख और चोट लगायी,—"कैलाश बाबू रूसी विचारोके आदमी हैं और रूसवाले परमात्मा और धर्मको व्यर्थ समझते हैं।"

रिसाल सिंह यह तो मानता था कि परमात्माको न मानना बुरी बात है। लेकिन रूसी विचार रखना तो वह अच्छा समझता था। उसने फौजमें और फौजसे बाहर रूसकी प्रशंसा सुनी थी। उसे यह सुनकर बहुत हैरानी हुई और वह बोला,—"पण्डितजी रूसवाले बहादुर बहुत हैं। देखो इतने बड़े जर्मनको भगा दिया।"

उसके निकट बहादुर होना और परमात्माको मानना एक बात थी। वह सोचा करता था कि रूसकी जीतमें परमात्माका हाथ है।

"ऊँ! पगला कहींका। मार भगाना भी कोई बहादुरी है? यह तो वहशीपन है। तुम जरा अपनी ही बात लो। क्या तुम किसीसे कम बहादुर हो? लेकिन तुम फौज से क्यों भाग आये? क्योंकि तुम्हारे मनमें भगवानका भय है और तुम दूसरे आदमीको मार नहीं सकते। लेकिन रूसी ऐसे हैं कि किसी परमात्माको नहीं मानते और आदमीको निर्दयतासे मार डालते हैं। बस यही उनकी बहादुरी है।"

जब कैलाशको दूसरे कैदी कई बार भगोड़ा कह कर पुकारते थे, तो उसके दिल पर चोट लगती थी और वह सोचने लग जाता था कि मैंने वाकई कायरता दिखायी है। जब मै भर्ती होकर युद्ध-क्षेत्रमें चला गया था, तो मेरा कर्तव्य था कि मै डटकर लड़ता। इस विचारसे उसका मन आत्म-ग्लानिसे भर जाता था। पण्डितजीके इस उपदेशने यह विचार उसके मनसे निकाल दिया और वह उनकी ओर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टिसे देखने लगा।

लेकिन पंडितजी खुद कैलाशके सम्मुख कई बार रूसी बहादुरीकी तारीफ कर चुके थे और उन्हें अपनी यह बात अब भी याद थी। लेकिन आदमी पहचान कर बात करना ही तो उनका सबसे बड़ा गुण था। वे अपने इस गुणको समझते थे और इसपर गर्व करते थे। रिसाल सिंहकी आँखोंमें अपनी सफलताका सन्देश पढकर वे मन ही मनमें झूम उठे और हुक्केका एक लम्बा कश खींचकर बोले,—"रूसवालों ने अपने देशमें सब मन्दिर और मस्जिदें गिरा दी हैं। अगर कैलाश बाबूका बस चले, तो वे यहाँ भी एक मन्दिर और एक मस्जिद न रहने दें। तुम नहीं देखते, वे न वेदको मानते हैं और न गीताको।"

पंडितजीने अपनी बात समाप्त ही की थी, कि बड़े रसोइयेने रिसालको ड्योढ़ीसे दूध लानेके लिये पुकारा और वह चला गया। लेकिन जब दूध लेने जा रहा था, तब भी उसके दिमागमें ये ही विचार चक्कर लगा रहे थे। उसे कैलाशके ये शब्द स्मरण हो आये,—"रिसाल! तुम गीता समझ नहीं सकोगे। अभी कोई और किताब पढ़ा करो।" क्या गीता भी समझनेके लिए पढ़ी जाती है? इसे तो पढ़ लेने मात्रसे पुण्य मिलता है। कैलाश ऐसा नही मानता, तभी उसने पढ़नेसे मना कर दिया। रिसाल सिंहने इतना स्पष्ट भले न सोचा हो परन्तु, उसके मस्तिष्क पर प्रभाव ऐसा ही पड़ा। और मन्दिर गिरानेकी बात तो इतनी भयानक थी, कि वह इस विचारसे ही काँप गया। उसने फैसला कर लिया कि कैलाश खतरनाक आदमी है।

आज दोपहरको जब खाना खिलानेके पश्चात् मशक्कती फारिग होते हैं, पंडितजी अपने कमरेमें लेटे हुए थे। वे एक हाथसे पंखा कर रहे थे और एक हाथसे हुक्केकी नली पकड़े हुए थे। रिसाल सिंह बैठा उनकी टांगें दबा रहा था। पंडितजी की यह पुरानी आदत थी। जब तक उनकी टांगें दबायी न जाएँ, उन्हें चैन न मिलता था। आज कई दिनोंके बाद यह सुख उन्हें प्राप्त हुआ था। आधे घंटेमें ही तबीयत हल्की हो गयी और उन्हें नींद आने लगी। वे करवट बदलकर लेट गये और अपने हाथका पंखा रिसाल सिंहको पकड़ा दिया।

यही समय था, जब कैलाश रिसालको पढ़ाया करता था। वह थोड़ी देर इन्त-

जार करता रहा। जब वह न आया, तो खुद ढूँढने चला। जब वह पंडितजीके कमरेके सामने आया, तो वे सोये हुए थे। रिसाल पास बैठा पंखा कर रहा था और सोच रहा था,—"पंडितजी बुजुर्ग आदमी हैं और देशभक्त हैं। उनकी जितनी भी सेवा की जाए, थोड़ी है और सेवाका फल जरूर मिलता है।" यह सोचकर उसने अपने अन्दर एक नया सुख महसूस किया और जोर जोरसे पंखा हिलाते हुए श्रद्धायुक्त नेत्रोंसे पंडितजीकी ओर देखा। पंडितजीके चेहरेपर अथाह शांति झलक रही थी। रिसाल सिंहने समझा कि वे वाकई देवता हैं। अगर वे उसे सत्य मार्ग पर न डाल देते, तो कैलाश उसे नरकमें ढकेल देता,—"कितना मीठा और धोखेबाज है कैलाश।" उसका मन घृणासे भर गया और उसकी निगाह बाहर की तरफ गयी, तो कैलाश सामने खड़ा दीख पड़ा। रिसालने पंखेकी ओट करके अपनी गर्दन दूसरी ओर घुमा ली।

घरौंदा

आज बीस तारीख थी।

हर महीनेकी बीस तारीख स्वर्णाके लिए दुखका कारण होती थी। उसका शरीर ऐंठने लगता था। तबीयत इतनी बोझिल हो जाती थी, मानों आत्मामें किसीने सीसा भर दिया हो। इस तारीखका हरेक मिनट साँपकी तरह लहराता हुआ उसके सीनेपरसे गुजरता था और वह भी चींटीकी तरह धीरे-धीरे। जैसे कभी खत्म होनेको ही नहीं आएगा यह दिन।

लेकिन छः महीने पहले यही बीस तारीख उसके लिए जीवनकी उत्कृष्ट प्रसन्नताओंकी सूचक बनी हुई थी। मधुर कल्पनासे उसका अङ्ग अङ्ग खिल उठता था, नसोंमें खून मचलने लगता था, आँखोंमें मस्ती भर आती थी और होंठों पर मुस्कराहट दौड़ जाती थी। इस मस्ती और इस मुस्कराहटको देखकर उसकी सहेली पार्वती झट कहती थी,—"हूँ, बीस तारीख याद आ रही है न।"

उमा, प्रकाश और सरोज कहकहा बुलन्द करतीं और छेड़छाड़का तवील सिलसिला शुरू हो जाता। उमा आँखोंमें आँखें डाल कर कहती,—"वह देखो, जीजाजीकी तस्वीर बन रही है मनमें।"

"क्यों ठीक है न स्वर्णा?" प्रकाश पूछती और सबकी प्रश्नसूचक निगाहें एकबारगी उसके चेहरे पर गड़ जातीं। वे उनकी सहेलियाँ थीं—मनकी भेदी सहेलियाँ।

"हाँ बन रही है।" वह लज्जा और झिझकको एक ओर रखकर बिलकुल

निर्भीक भावसे कहती। उसकी यह निर्भीकता सखियोंको न सिर्फ नि शस्त्र कर देती, बल्कि उनर्f चञ्चल प्रसन्नतामे अभावकी जलन पैदा हो जाती।

आज उसे जब उसे सहेलियोंकी वह छेड़छाड़, वे आँखें, वह प्रश्न और अपना जवाब याद आते थे, तो मनमें एक असह्य कसक उठती थी और समस्त शरीर दर्दसे कराह उठता था। इस बीचमें उसकी दो सहेलियाँ प्रकाश और उमा ब्याही जा चुकी थी। लेकिन वह—जिसका ब्याह उनसे पहले होना था, अभी तक कुआँरी बैठी थी, हालाँकि वे उम्रमें उससे छोटी थी। उसके बाईस वर्षके जीवनमे कुँआरीपनके एक-एक दिनका प्रवेश थके हुए पाँवमें काँटेकी तरह चुभ रहा था। उसे अपनी सारी जिन्दगी सूखी, रूखी और निरानन्द दिखायी देती थी। और उसके प्रत्येक मिनट पर यह कौमार्य विशाल रेगिस्तानकी सदृश छाया हुआ था। जिसमें तपती हुई रेत थी और कभी न बुझनेवाली प्यास। और फिर जब बादल घटा बनकर छाया, बरसनेके सब सामान हो गये लेकिन वह बिना बरसे ही चला गया, तो इस प्यासने तीव्रता धारण कर ली। इस तीव्रताके मारे उसका कलेजा जल रहा था और रातोंकी नीद सपना बन गयी थी।

उस दिन जब प्रकाशका ब्याह संस्कार था, वह भी मण्डपमें बैठी थी, पवित्र अग्निमें घी और सामग्रीकी आहुतियाँ डाली जा रही थीं। पुरोहित मन्त्र पढ रहा था। लोग-बाग ठठोली कर रहे थे। लेकिन स्वर्णा पवित्र सम्बन्धमें बाँधे जानेवाले जोड़ेकी ओर देख रही थी। दूल्हाके होंठों पर मुस्कराहट थी। लेकिन प्रकाशकी आँखें झुकी थी और मुख पर गम्भीरता अंकित थी। स्वर्णा उनके जज़बातका अन्दाज लगा रही थी और सोच रही थी,—"कितनी बन रही है यह प्रकाश।" लेकिन ज्यों ज्यों आगमें आहुतियाँ पड़ रही थीं, गम्भीरताकी तह गहरी-गहरी होती जा रही थी। स्वर्णा देखनेमें इतनी तल्लीन थी कि मामूलीसे मामूली तब्दीली भी उसकी तीव्र दृष्टिसे ओझल न हो पाती थी। उसके अपने भीतर हलचल मची थी। जैसे ज्वालामुखी पर्वतकी तहमें लावा उबल रहा हो। अपने मनकी इस दशाको छिपाये रखनेके लिए उसे प्रकाशसे भी अधिक आत्मशक्ति और मनोबलकी आवश्यकता थी। लेकिन यह उसके बसका रोग न था। आँखोंमें उदासी और चेहरे पर स्याही झलक आयी थी। सरोज पास ही बैठी थी। उसने बगलमें चुटकी काटकर कहा—"क्या बीत रही है तुम्हारे दिलपर?"

स्वर्णा बोली नहीं, मुस्करा मात्र दी। पर ससारकी किसी भी भाषाका कोई भी शब्द इस मुस्कराहटसे अधिक उसके मनकी दशाको व्यक्त नहीं कर सकता था।

यही समय था जब पुरोहितने प्रकाशको अपना हाथ दूल्हाके हाथमें देनेको कहा। मेंहदी रचा हाथ ऊपर उठा। बिजली-सी कौंधी और गम्भीरताका खोल टूट

कर चूर-चूर हो गया। मनकी मुस्कराहट आँखोंमें प्रकट हुई। प्रकाशका चेहरा मारे लज्जाके सुर्ख हो गया और झुकी हुई पलकें और अधिक झुक गयी।

स्वर्णाने जिस तूफानको सीनेमे दबा रखा था, उसमें तुन्दोतेज लहरे उठने लगी। उसके लिए वहाँ बैठे रहना मुश्किल हो गया। वह उठकर घर आयी और दरवाजा बन्द करके चारपाई पर धमसे लेट गयी। उसके भीतरका लावा आँसुओंकी शकलमें बह निकला। वह औंधे मुँह पड़ी सुब्कियाँ ले लेकर रोती रही—रोती रही। घर पर टोकनेवाला कोई नहीं था। सब ब्याहवाले-घर पर गये हुए थे। और अगर वे घर पर भी होते, तब भी वह इसी प्रकार पड़ी रो सकती थी। किसे उसकी परवा थी? कौन उसका हमदर्द बैठा था?

वे पाँच बहने थीं। बाप ठेकेदारी करता था। जब वह चार लड़कियोंका ब्याह कर चुका थाा, तो उसकी पत्नी मर गयी। स्वर्णा बे माँ की हो गयी। पिता काम-काजके कारण अकसर घरके बाहर रहता। इसलिए स्वर्णाको मंझली बहनके यहाँ छोड़ दिया। वह उस वक्तसे अब तक वहीं रहती थी। उसके पिताको एक ठेकेमें बहुत-सा नुकसान उठाना पड़ा। जीवनकी सारी पूँजी वह लड़कियोंके ब्याहमें खर्च कर चुका था। जो थोड़ा बहुत बच गया था, वह इस नुकसानकी भेंट हो गया। उसने फिर कभी ठेकेमें हाथ न डाला। तीर्थयात्राके लिए वृन्दावनकी ओर चला गया और उसने वहीं सन्यास धारण कर इस ससारके झंझटोंसे छुटकारा हासिल किया और परलोक सुधारनेमें लग गया। स्वर्णा बेचारीको बहनका सहारा बाकी रह गया।

स्वर्णाकी यह तीसरी बहन करुणा सब बहनोंसे निराली थी। उसकी सब बहनें गोरी और देखनेमें अच्छी लगती थी। लेकिन इस करुणाका रंग काला और नैन-नक्श भी कुछ जँचते नहीं थे। शायद इसीलिये वह जिद्दी और चिड़चिड़े स्वभावकी हो गयी थी। लघुता-भाव हर वक्त उसके मस्तिष्क पर सवार रहता था। अगर उसकी तनिक बात भी मानी न जाती, तो उसका मिजाज बिगड़ जाता और वह फौरन लड़ पड़ती। घरवालोंकी नाकमें दम कर देती। अपने आपको अथवा दूसरेको चाहे कुछ भी क्षति पहुँचे, लेकिन जो बात एक बार उसके मुँहसे निकल गयी वह गिरने न पाये। माँ-बापके घर तो उसका यह हाल था ही, ससुरालमें आकर भी उसने अपनी वह आदत न बदली। उसका पति नन्दकिशोर घरसे दूर एक धार्मिक-संस्थामें क्लर्क था। वहाँ प्रत्येक व्यक्तिकी खुशामदपर रोटीका दारो-मदार था। करुणा भी उसके पास परदेशमें रहने लगी। नन्दकिशोरको अल्प शिक्षा, चापलूसी, धार्मिक वातावरण और रोजकी चिन्ताने दब्बू और भीरु बना दिया था। किसीसे लड़ाई करनेका साहस ही न रह गया था। फिर भला वह पत्नीसे क्या बिगड़ता। उसे तो

घरमें दो घड़ी सुख चैनसे व्यतीत करनेको मिल जाए वह इसीमें खुश था। करुणा जिस तरह चाहती, वह उसी तरह कर देता। एक दो बार उसकी बातको टालकर देख लिया था, हफ्ता भर चूल्हेमें आग नहीं पड़ी थी। उसने बड़ी खुशामदोंके बाद पत्नीको मनाया था। वह उसके रवैयासे तंग जरूर था, पर यह सोचकर सहन कर रहा था कि मर्द अबतक औरतपर अत्याचार करता आया है। अगर वह कुछ ज्यादती करती हो, तो वह प्रतिक्रिया मात्र है, उसका अधिकार है। मर्दके पापका प्रायश्चित है।

फिर करुणा कन्या-पाठशालामें अध्यापिका थी। पतिकी तनखाहसे अधिक खुद कमाती थी। जब वह उसकी आर्थिक मुहताज नहीं, तो वह उसकी गुलाम क्यों रहे? इस विचारने उसे स्वतन्त्रता प्रदान की थी। यह तो दुरुस्त था। लेकिन आजादी जब सीमाको लाँघ जाए, तो वह अत्याचार बन जाती है। वह न सिर्फ पति, बहन और बच्चोंको अँगूठेतले रखती थी, बल्कि स्कूलकी मुख्य अध्यापिका भी उससे तंग आयी हुई थी। क्योंकि वह स्कूलके प्रबंधमें खाम-ख्वाह दखल देती और अगर उसकी बात न मानी जाती, तो वह लड़ पड़ती। मुखाध्यापिकाने कई बार प्रबन्धकोंसे शिकायत की, पर उसकी बात किसीने न सुनी, क्योंकि करुणा नन्दकिशोरकी पत्नी थी और नन्दकिशोर बहुत अच्छा आदमी था—भलामानस और स्वामीभक्त।

नन्दकिशोर दफ्तर और करुणा स्कूल चली जाती। घरका सब काम काज स्वर्णा करती। उसने दो बार मैट्रिककी परीक्षा दी, लेकिन दोनों बार वह असफल रही। उसे शिकायत थी कि काम अधिक होनेसे वह घरपर पढ़ नहीं सकती। बहनकी व्यर्थ झिड़कियाँ, रोब, आतंक और सख्त आवाज स्कूलमें भी उसका पीछा नहीं छोड़ती। उसके मनकी कलीको मसलती रहती है। वह जिन्दगीतकसे उकता जाती है। अपना पाठ ध्यानसे नहीं सुन सकती। वरना बापके घर उसने नौ जमात तक शिक्षा पायी। वह कभी फेल न हुई। काश! उसे बापके घर रहना नसीब होता तो वह कमसे कम मैट्रिक पास कर लेती। बहनको तो फेलका बहाना मिल गया। वह तो पहले ही साल स्कूलसे उठा लेती। मगर उस वक्त बापने वानप्रस्थ ग्रहण नहीं किया था। वह बेटीकी खैर-खबर लेनेको मौजूद था। अगर वह दो चार साल और वानप्रस्थ न लेता तो अपनी इस बेटीको भी किसी ठिकाने लगा जाता। उसके वानप्रस्थ लेने और स्वर्णाके फेल होनेकी देर थी कि बड़ी बहनने झट कह दियाः—

"पास नहीं होती तो क्या जरूरत है स्कूल भेजनेकी?"

"हाँ स्वर्णा, क्या करना है स्कूल जाकर पास होना जरूरी तो नहीं है। तुम्हारे

अन्दर मैट्रिककी योग्यता तो पैदा हो ही गयी हैं।"

नन्दकिशोरने समर्थन किया। इसके अलावा वह करता ही क्या ? स्वर्णाको इस कमजोर तबीयत इन्सानपर क्रोध आया। 'योग्यता तो पैदा हो गयी है—जलेपर नमक छिड़कता है। तुमने भी तो मैट्रिक पास किया है। क्या कहना है तुम्हारी योग्यताका! भीगी बिल्ली बने रहते हैं मियाँ। बना फिरता है मिट्टीका माधव। मोमकी नाक जिधर चाहो घुमा लो। छी, छी! फिर उसके प्रति दया उपज आयी। आखिर वह किसपर गुस्सा करती ?

और हसरतोंकी तरह पढ़नेकी हसरत भी मनमें घुटकर रह गयी। स्कूलके जमानेमें जो वक्त आजादीका मिलता था, वह भी कामकाजकी भेंट हो गया। चूल्हे-चौकेके अतिरिक्त करुणा स्कूल जाते समय हिदायत कर जाती। "यह कपड़े धो लेना, यह बटन टाक देना" "दाल बीनना" "बच्चेको खिलाना" न जाने कौन-कौन-सा काम उसके सुपुर्द कर दिया जाता और उसे करना पड़ता। जवानीकी बहारें बीत रही थीं। बहन और बहनोईमें विवाहकी बात उठती और किसी परिणामके बिना ही आयी-गयी हो जाती। स्वर्णाके रौंदे हुए अरमान सर उठाते और हवाका झोंका गुजरते ही फिर दब जाते।

आखिर जब यह बात सिरे बढ़ी, तो उसे कितनी प्रसन्नता हुई थी। विवाहका विचार जहाँ उसके भीतरकी औरतको सन्तुष्ट करता था, वहाँ उसकी मानवता बहनकी कठिन कैदसे छूट जानेमें आनन्द पाती थी। वह जीवन और स्वतन्त्रताके द्वारपर खड़ी थी। वह भी अपने दिलके अरमान निकाल सकती थी। जब "वे" मुलाकातको आये, तो उनके साथ एक कमरेमें खड़े होना कितना रोमाचकारी था। उसके अंग-अंगमें एक मधुर गुदगुदाहट उठ रही थी। वह अपने-आपमें न थी। उससे कुछ बात करते न बनता था, लेकिन जी उनसे बोलनेको न चाहता था। होठ हिलते थे। "हाँ, कहो-कहो।" उन्होंने बढावा दिया।

"पढा दर्मयान ..म...रह गयी। मैं...मै—मैट्रि...का" उसने शर्माते-शर्माते कहनेको एक बात कही वह भी अधूरी। "जरूर पास करना। मै तुम्हारी मदद करूँगा। तुम चाहो तो कालेजमें पढ़ भी सकती हो।"

स्वर्णाने कृतज्ञतापूर्ण निगाहोंसे उनकी ओर देखा। कितने अच्छे थे वे। भोले-भाले, हँस मुँख। सूरतमे कोई खास बात भी नहीं थी फिर भी स्वर्णाके मनमें वह उतर गयी। उसके सपनोंको, कल्पनाको और वह एकान्त क्षणोंको रंगीन बना देती थी। वह उन्हें भूल नही सकती। उनके अन्दर कोई आकर्षण अवश्य था, जिसने उसके भीतरकी औरतको मोह लिया था।

स्वर्णाको वे और उन्हें स्वर्णा पसन्द थी। दोनों ओरसे सगुण भेजा गया।

सम्बन्ध निश्चित हो गया। विवाहकी तिथि नियत कर दी गयी, सिर्फ एक हफ्ता बाकी था। वे आये और कहने लगे,—"मुझे जो कुछ खरीदना है, अच्छा है वे खुद या बहनजी साथ चलकर पसन्द कर लें।"

स्वर्णाके बजाय उसकी बहनने जाना पसन्द किया। उसे तो यह शुभावसर भाग्यसे मिला था। लोगोंपर अपनी पसन्द प्रकटकर उसे विशेष आनन्द प्राप्त होता था। वह उनके साथ शापिगके लिये चली। पहले सराफकी दूकानका रुख किया। करुणाकी पसन्दके अनुसार कॉटे, लाकेट, दो अंगूठियाँ और चार चूड़ियाँ खरीद ली गयीं।

"बस, चलिये अब कपड़ा खरीदें।" उन्होंने कहा— "ये लच्छे देखिये कितने अच्छे हैं, ये भी खरीद लें। दो चूड़ियोंसे तो कुछ नही होगा। इन्हें पहन कर कलाई भरी भरी लगेगी।

"पहले कपड़ा खरीद लें। फिर देख लेंगे अगर गुंजाइश हुई।"

वे सराफेसे बजाज हट्टेमें गये। इधर उधर दो चार दूकानोंपर कपड़ा देखा। एक सारी जम्परका कपड़ा खरीद लिया गया। और कोई चीज पसन्द न आयी। कल अनारकली जानेका फैसला हुआ।

"वे लच्छे भी खरीद लेते, जो बहनजीको पसन्द थे।"

"अब तो बिसात नहीं, फिर खरीद लेंगे।"

अगले दिन सुबह ही उन्हें घरपर बुलाया गया और स्वर्णाने उन्हें यह बात कही। उत्तर सुनकर वह ऐसी प्रसन्न हुई, गोया जेवरोंसे लद गयी हो। सरलता एक विचित्र गुण है। मनको मोह लेती है। स्वर्णा उनसे सहमत हुई। पर उसकी कौन सुनता था। लच्छे पसन्द तो करुणाने किये थे और उसीने खरीदनेका सवाल उठाया था। बात तो उसकी गिर रही थी और उसे यही पसन्द न था। वह तनकर बोली,—"बिसात नहीं तो न सही। मै एक कङ्गाल आदमीके साथ अपनी बहनको नहीं बाँध सकती।"

और फिर शामको उन्हें बुलाया गया। नन्दकिशोरने मुँह बनाकर कहा:—"आप न जाने क्या कह गये हैं उसे। बेचारी सुबहसे रो रही है और कहती है कि वे तो बहुत सख्त हैं। सारी उम्र रोते गुजरेगी।"

"मैंने यह बात नही कही।"

"आखिर कुछ तो कहा होगा, वह तो रोते-रोते आधी हो गयी। आप देखें तो कहे छः महीनेसे बीमार है।

"ज्यादा बात ही नही हुई। उन्होंने लच्छे खरीदनेको कहा। मैने कहा कि फिर खरीदेंगे।"

"आपके लिये यह मामूली बात है। लेकिन उसके लिये और सख्ती क्या होगी ? आखिर वह औरत है। सोचती है कि जो आदमी अभीसे हमारी बात नहीं मानता फिर क्या मानेगा।"

वे चुप हो गये। नन्दकिशोरने फिर कहा,—"रो रोकर हल्कान हो रही है। हम सब कहते हार गये। उठकर नहा, खाना खा। पर वह एक नहीं मानती। ऐसी हालतमें मै तो विवाहकर नहीं सकता, कलको कुछ ऐसी वैसी बात हो जाए, तो पराई कन्याको दोष लगे।"

वे बिना कुछ कहे ही न जाने क्या सोचते हुए चले गये। स्वर्णा एक खिड़कीमें बैठी उन्हें जाते देख रही थी। उनके चेहरे पर उदासी न थी। कुछ खो देनेका गम न था। एक शांत भाव था। शायद वे सोच रहे थे। अच्छाही हुआ। जो लड़की अभीसे गहनोंके लिये जिद करती है, वह क्या जीवनको सुखी बना सकेगी। स्वर्णाके जीमें आया कि उनका रास्ता रोकले और कहे—"ठहरो, ठहरो। मै कुछ नहीं माँगती। सिर्फ तुम्हें चाहती हूं। मै गहनोंके लिये जिद नहीं करती। आपको जो कुछ बताया गया है, सब झूठ है। पर मै झूठी नहीं हूँ। औरत हूँ। मुझे सहारा चाहिये और वह सहारा आप ही का है।"

लेकिन खिड़कीकी सलाखोंने उसे रोक रखा और वे दूर चले गये। स्वर्णाकी आशाओंका सुन्दर भवन ऊपर उठा। कल्पनामें पूर्णभी हुआ। लेकिन वह उसमें पग धरने भी न पायी थी कि पहलेही धड़ामसे गिर पड़ा। यह देखने दिखाने और पसन्द नापसन्दका ढोंग क्यों ? उसे फिर बहनोई पर गुस्सा आया। उसने किस चतुरतासे बात बना दी। बात क्या बना दी, बल्कि सिखाई हुई बात कह दी। यह भी कोई इन्सान है ? यह भी कोई चीज है ? उसका एहसान मर चुका है। वह यह भी नहीं सोचता कि उसके बारेमें वे क्या ख्याल करेंगे, वह आदमी क्या सोचेगा। जिसने बीचमें पड़कर यह सम्बन्ध बनाया था और जिसको इसी नन्दकिशोरने बड़ा आदर्शवादी बनकर कहा था,—"हमें तो बस बा रोजगार लड़का चाहिये। चाहे वह एक सूट लेकर आए और ब्याह कर ले जाए।"

कोई कुछ कहे, कुछ सोचे। जीना तो स्वर्णाका दूभर हो गया। उसके सोये हुए अरमान जागे। कुछ देर कल्पित सुखपर पलते रहे। फिर उन्हे ऊचे मीनारसे पथरीली जमीनपर पटक दिया गया। वे दर्दसे कुलबुला उठे। हर महीनेकी बीस तारीखको यह दर्द तीव्रता धारण कर लेता था।

आज बीस तारीख थी। सर्दीका महीना। दो दिनसे मेंह बरस रहा था। उसकी बहन और बहनोई घरपर थे, क्योंकि रविवारकी छुट्टी थी। दोनों सुबहसे उठे नहीं थे, अपने कमरेमें पड़े थे। स्वर्णाने सुबह चाय बना दी। दोपहरको खाना खिलाया

और अब फिर चाय बनायी। आलू और प्याजके पकौड़े तलकर दिये। वे खा रहे और हँस रहे थे और स्वर्णा उनके बच्चोंको खिला रही थी। खिला रही थी और सोच रही थी। "स्वर्णा चली जाएगी तो हमें नौकर रखना पड़ेगा।"

उसकी बहनने विवाहकी बात निश्चित हो जानेके बाद कहा था। वह कहकर हँस पड़ी थी। लेकिन स्वर्णाका मुँह उतर गया था और यह वाक्य अबतक उसके मस्तिष्कमें कनखंजूरेकी तरह चिपटा हुआ था। इसके हरेक शब्दमें हजार हजार डंक छिपे थे। वह बिलबिला उठती थी,—' बहन बनी फिरती है, नौकरानी समझ रखा है मुझे।"

वाकई आज वह नौकरानी बनी हुई थी। सारा दिन काम करती रही थी। उसके बच्चोंको खेला रही थी और वह अन्दर ऐश कर रही थी, चाय पी रही थी और हँस रही थी।

उसने बच्चेको गोदसे उतार दिया और खिड़कीके पास जाकर बाहर देखने लगी। सुबहसे सूर्य नहीं निकला था। बादल छाये थे। कभी थम जाते थे और कभी बरस जाते थे। अब जब कि वह देख रही थी, बादल प्रतिक्षण गहरे होते जा रहे थे। जैसे पूर्वसे नयी घटा उठी हो। वह उस दिन इसी खिड़कीमेंसे उन्हें जाते हुए देख रही थी। वह उनका रास्ता न रोक सकी। उन्हें अपने मनकी बात न कह सकी। एक कैदीकी तरह मजबूर देखती रही और अब तक मजबूर थी। उसके अरमान घुट घुट-कर मर रहे थे। दिल भरा आ रहा था और बादल गहरे होते जा रहे थे। अंधेरा बढ़ रहा था। सूर्य निकलनेका प्रयत्न करता था, लेकिन बादल उसे रोके हुये थे। स्वर्णा पूर्वकी ओर देख रही थी कि कहीं कोई किरण दीख पड़े। पर अँधेरा बढ़ रहा था। बादल बेडोल तस्वीरें बनाते, बिखरते, फैलते और गहरे होते जा रहे थे। उसके कल्पना-पट पर भी एक चित्र उजागर हुआ।

जहाँगीर और नूरजहाँ झूलेमें बैठे थे। एक बांदी उन्हें झूला झुला रही थी। उसकी आँखें जमीनपर गड़ी थी। उसे सम्राट और साम्राज्ञीकी ओर देखनेकी मनाही थी। क्योंकि वे प्यार कर रहे थे। एक कमीनी औरत उनका प्यार क्यों देखे? वह प्यार देख नहीं सकती और खुद प्यार कर नही सकती। कितनी मजबूर थी वह!

स्वर्णाने यह चित्र अजायब-घरकी आर्ट गैलरीमें देखा था और उसके मस्तिष्क-क्षितिजपर खिंचकर रह गया था और बहनका वह वाक्य कनखंजूरेकी तरह चिपटा हुआ था। कितनी वेदना थी इन दोनोंके मिश्रित एहसासमें? वह भी तो एक बाँदी थी। कमीनी, कंगाल और मजबूर—दहेजमें आयी हुई, आँखें झुकाये झुला रही थी और उसका मन रो रहा था। बादल जोरसे बरसने लगा। सतत वेगके साथ झड़ी

लग गयी। सामने कच्ची दीवारों का एक मकान बना था। जिसमें कभी एक अज-नवी आ बसा था लेकिन अब सूना पड़ा था। उसकी छत टपकती थी बुनियादें बोदी थीं। एक दीवार देखते-देखते गिर पड़ी। स्वर्णाके मनको धक्का सा लगा और उसे बचपनकी एक घटना स्मरण हो आयी। उसनेएक घरौंदा बनाया था और इस बहनने उसे लात मारकर गिरा दिया था क्योंकि वह उसके अपने घरौंदेसे अच्छा बना था।

नया खेल

"आओ कोई खेल खेलें।"

"हाँ, हाँ, आज तो कोई खेल खेलें।"

"कौन-सा खेल ?"

"आँख मिचौनी।"

"नहीं जनाब, राजा।"

"हाँ भई, राजा, राजा।"

बहुत सी आवाज़ोंने एक साथ समर्थन किया और खेल शुरू हो गया। एक लड़का राजा बना, एक मन्त्री और एक थानेदार। बाकी लड़के सिपाहियों, चोरों, दूकानदारों और किसानोंमें बँट गये।

चौकके दक्खिन ओर ऊँची दीवारसे सटा एक थड़ा बना था। वह गद्दीका काम देने लगा। साफ़-सुथरे आकाशमें चाँद निकला हुआ था और ठंडी हवा चल रही थी। राजाके दाहिनी तरफ़ दस पन्द्रह कदमके फ़ासलेपर चार-चार और पाँच-पाँच सालके बच्चे दीवारसे सटे बैठे थे और न जाने क्या कुछ सोच रहे थे। उन्हें न राजासे मतलब था और न मन्त्रीसे। वे अपने कल्पित संसारमें घूम रहे थे। एक बालक दूसरे बालकसे कहने लगा,—"मद्दी यहाँ आ, तुझे एक बात बताऊँ।" फिर वह खुद ही मद्दीके पास गया और कानमें कुछ सुनाकर पूछा,—"है ना ?" मद्दीकी आँखें आश्चर्य से फैल गयीं और वह बातको हृदयमें उतारते हुए बोला—"हूँ .."

थानेदार जोर-जोरसे बाजू हिलाता और छातीको जरूरतसे ज्यादा फुलाता हुआ इधर से उधर और उधर से इधर घूम रहा था। उसके साफ़-सुथरे चेहरे पर बालका नाम तक न था लेकिन वह वैसे ही मूँछोंको ताव देकर अपने अन्दर थानेदारीकी शान पैदा कर रहा था। उसके सिपाही सामने मार्च कर रहे थे। उनके होंठ बार बार हिलते थे और उनसे 'लैफ्टराइट' के शब्द निकलते जाते थे।

"राजा, राजा, तेरी नगरीमें चोर,"—एक तरफसे आवाज आयी। "कहाँ है चोर? कहाँ है चोर?" सिपाहियोंने उस तरफ दौड़ना शुरू किया और थानेदार उसी जगह खड़ा चिल्लाने लगा,—"भागो, भागो। वह गया चोर, जाने न पाए!"

आगे-आगे चोर, पीछे सिपाही भाग रहे थे। 'चोर, चोर! पकड़ना, पकड़ना' की आवाजें भी बुलन्द हो रही थीं। लोग भी पुलिसकी सहायता करते थे। पर चोर हाथ न आता था। सारी बस्तीमें हलचल मची हुई थी। हरेकको अपनी शक्ति, साहस और वीरता प्रदर्शनका सुअवसर मिला था।

आख़िर चोर पकड़ा गया। सिपाहियोंने उसे हथकड़ी (जो सूतकी एक-बटी रस्सी थी) पहना दी और खींचते हुए थानेको ले गये।

दूसरे दिन मुकदमा पेश हुआ।

"इसे क्यों पकड़ा है?"—राजाने पूछा।

"महाराज यह चोर है।" थानेदारने उत्तर दिया।

"अच्छा, हमारे राजमें भी चोरोंको बसनेकी हिम्मत होती है।" राजाने राजसी ठाठसे कहा, और फिर तेज़-तेज निगाहोंसे चोरकी ओर देखते हुए दर्याफ्त किया—"क्यों बे, तू ने चोरी की?"

"नहीं महाराज, मैं तो बेकसूर हूँ। ये लोग झूठा इलजाम लगाते हैं।"—चोरने हाथ जोड़े।

"थानेदार साहेब, आपने इसे बेकसूर क्यों पकड़ा?"

"बेकसूर कहाँ महाराज, यह तो बिलकुल पक्का चोर है और हमने इसे चोरी करते मौकेसे पकड़ा है।"

"तो कोई गवाह लाये हो?"

"क्यों नहीं महाराज, बिना गवाहोंके बात कैसी बनेगी!" थानेदारने जवाब दिया और तुरन्त एक सिपाहीसे कहा,—"करीमुद्दीन बुलाओ गवाहोंको।"

दो गवाह उपस्थित हुए। एक साठ पैंसठ सालका बूढ़ा था। उसकी कमर झुक गई थी। लाठी टेककर चलता था और बीच बीचमें खाँस लेता था। दूसरा भारी-सा पगगड़ बाँधे था। शायद वह नम्बरदार था। दोनोंने हाथ जोड़कर राजाको नमस्कार किया और एक तरफ़ खड़े हो गये।

"तुम गवाही दोगे ?"—राजाने पूछा।

यह सवाल सुनकर वे एक दूसरेका मुँह ताकने लगे, जैसे मशविरा कर रहे हों कि कौन जवाब दे। आख़िर आँखोंके इशारेसे तय पाया और बूढ़ेने कम्पित स्वरमें कहा—"हाँ महाराज।"

"अपने धर्म और ईमानको जानकर सब बात सच-सच कहना।"—राजाने कहा।

"क्यों नहीं महाराज, सब सच ही कहेंगे।" बूढा खाँसा और उसने आँखोंमें कुतूहल भरकर कहा—"राज-दरबारमें आकर भी कोई झूठ बोलता है ?"

"अच्छा फिर बताओ। तुमने उसे चोरी करते देखा ?"

"हाँ महाराज, देखा क्यों नहीं ? यह कीड़ूकी दूकानमें सेंध लगा रहा था।"

इस पर अदालतमें खड़े सब लोग हँस पड़े।

"और तुमने ?" राजाने दूसरे गवाहसे पूछा।

"जी महाराज, यह तो पक्का चोर है। किसी चीजपर हाथ पड़ जाए, तो छोड़ता ही नहीं। परसोंकी बात है, यह चूहड़ किसानकी भैंस ले भागा।"

लोग फिर हँस दिये। अब यह एतराज कौन उठाए कि दोनों शहादतोंमें इख्तलाफ़ है। सेंध लगानेका भैंस चुरानेसे कोई सम्बन्ध नहीं। और फिर यह किसीने नहीं बताया कि इस समय उस पर किस चोरीका इलजाम लगा है। वहाँ तो उसे चोर सिद्ध करनेसे मतलब था और वह हो गया। राजाने फैसला सुनाया—"गवाहोंके बयान दुरुस्त हैं। तुम वाकई चोर हो। हम तुम्हें पाँच साल कैद और पचास रुपया जुर्मानेकी सजा देते हैं।"

यह फैसला सुनकर थानेदार, सिपाही और गवाह बहुत ही खुश हुए। उन्हें अपनी सफलता पर बहुत गर्व था। और चोर भी प्रसन्न था। और वह हो भी क्यों न ? उसकी कारगुजारी क्या किसीसे कम थी ?

उधर बालकोंमें से एकने ठीकरियाँ और कंकर अपनी जेबमे खनखनाते हुए कहा,—"मेरे पास सौ रुपया।" दूसरेने भी उसी प्रकार जेब खनखनायी और कहा,—"मेरे पास बीस सौ रुपया।" "और मेरे पास ?" तीसरा बोला,—"सौ सौ सौ…" वह न जाने कितने सौ और कहता, लेकिन जोशके कारण उसकी साँस फूल गयी। आखिर उसने दो बाजू फैला दिये, जिसका मतलब था कि उसके पास अनगिनत रुपया है।

* * *

फसल कट चुकी थी। राजाके कर्मचारी लगान वसूल कर रहे थे। सब रुपया सरकारी खजानेमें जमा हो रहा था। इस बीच थानेदारके पास शिकायत आयी।

"हजूर, और सब लोगोंने अपना लगान चुका दिया। पर वह बदमाश हरि नहीं मानता।"

"वह कहता क्या है?" थानेदारने पूछा।

"हजूर, वह कहता है कि जब कुछ पैदा ही नहीं हुआ। मै लगान कहाँसे दूँ?"

"अच्छा, उसे अभी पकड़ कर लाओ और हमारे सामने हाज़िर करो।"

वहाँ क्या देर थी? बहुतसे सिपाही दौड़ कर गये और हरिको पकड़ लाये। वह सुगठित शरीरका सुन्दर और हँस-मुख लड़का था। उसकी आँखे चंचलतासे भरी थीं और चेहरेसे चतुर और हाज़िर-जवाब दीख पड़ता था।

"क्या बे हरिके बच्चे, तू लगान क्यों नहीं देता?" थानेदारने गरज कर कहा।

"क्या करूँ सरकार?" हरिके स्वरमें न भयका अंश था और न झिझक। वह इतमीनानसे कह रहा था,—"पानी नहीं बरसा। लगान कहाँसे दूँ?"

"सरकारका काम पानी बरसाना नहीं, लगान लेना है।"

"आप माई-बाप हैं। खुद सोचे कि जब कुछ पैदा ही न हो, तो क्या आदमी मास काट दे?"

"हाँ, मांस भी काटना पड़ता है।"

"यह तो मुश्किल है सरकार।"

"मुश्किल क्या है? जिसे तुम मुश्किल कहते हो, देखो मै उसे अभी आसान बना देता हूँ।"—थानेदारने जवाब दिया और फिर सिपाहियोंसे कहा,—"चलो इसका सब सामान कुर्क कर लो।" "हाँ, हाँ, इसका सब सामान कुर्क कर लो।"

सिपाही तो क्या, किसान और दूकानदार भी अपना अपना काम छोड़ कर हरि के मकानकी तरफ चले। कुर्की शुरू हुई। "देखो यह बैलोंकी जोड़ी। सरकारी बोली तीस रुपया।"—थानेदारने कहा और फिर बोली चढ़नी शुरू हुयी और हरिके सुन्दर बैल सत्तर रुपयेमें कुर्क हो गये। इसके बाद हल, खाट और घरके बरतन तक नीलाम पर चढे। लड़के बढ़ चढ़ कर बोली देते थे और एक चीज कुर्क हो जाने पर ताली पीटते थे।

जब हरिका सामान कुर्क हो गया, थानेदारने छड़ी हिलाते हुए कहा,—"देखा न मजा, अगर पहले ही लगान दे देते।" और फिर टिप्पणी की—"सच है, सीधी उँगली घी नहीं निकलता।"

"सीधी उँगली क्या, कभी टेढ़ी उँगलीसे भी नहीं निकलेगा। यह भी कोई लगान लेना है? लूट मचाना है यह।"

"लूट मचाना है, तो लूट मचाना सही। सरकार सब कुछ कर सकती है"—थानेदारने अकड़ कर कहा।

"सरकार कर सकती है, तो हम भी सब कुछ कर सकते हैं, थानेदार साहब।" हरिकी छाती तन गयी।

"सरकारने तो करके दिखा दिया। तुमसे जो बन पड़े सो कर लो।"

"मैं डाकू बन जाऊँगा। फिर देखूँ मेरा कोई क्या बिगाड़ता है।"

"ऐ पागल! कहीं कोई ऐसे भी डाकू बनता है?"—एक पड़ोसीने कहा।

"बनता क्यों नहीं? जब दूसरा जीने ही न दे, तो ऐसे भी बनना पड़ता है।"—हरि बोला।

"हाँ, हाँ। हम सब डाकू बनेंगे, चोरोंको तो यह लोग पकड़ लेते हैं।" बहुत से लड़के एक साथ बोल उठे।

सारे लोग डाकुओंमें जा मिले। हरि उनका सरदार था। वे अपना काम करके जंगलोंमें जा छिपते, पुलिस ढूँढ़ते ढूँढ़ते थक जाती। कभी उनमें और पुलिसमें आमने-सामने लड़ाई होती। वे सिपाहियोंसे उनकी बन्दूकें छीनकर भाग जाते। उनके बढ़ते हुए प्रभुत्वको देख कर बहुतसे किसान भी अपनी जमीनें छोड़ डाकुओंसे मिलने लगे। उन्हें खेत जोतनेके बजाय हुल्लड़ मचानेमें अधिक आनन्द मिलता था।

इधर किसान अपने खेत छोड़ रहे थे, उधर छोटे बालक उनपर कब्जा जमा रहे थे। "यह मेरा और यह हम सबका साझा।"

डाकुओंकी प्रतिक्षण बढ़ती तादादको देखकर थानेदारके दिमाग़में बात आयी कि अगर उनके सरदारको पकड़ लिया जाए, तो सब काबूमें आ सकते हैं। यह सोच कर उसने अपनी तमाम शक्ति और बुद्धि हरिको पकड़नेमें लगा दी।

इसमें सन्देह नहीं कि थानेदार बहुत चतुर और चालाक था। लेकिन हरि भी उससे कम नहीं था। थानेदार जितनी चालें चलता, वह उन्हे असफल बना देता। जब पुलिसको उसे पकड़ लेनेकी पूर्ण आशा होती, तब भी साफ निकल जाता। लेकिन पुलिसकी महान शक्तिके सामने उसकी चालाकी कब तक ठहर सकती थी?

एक बार वह अकेला ही बहुतसे सिपाहियोंमें घिर गया। मुकाबिला तो खूब किया, लेकिन अन्तमें पकड़ा गया।

जब सिपाही उसे पकड़ लाये, तब थानेदारने पूछा,—"कहो, अब तो तुम्हारा सब कुछ बिगड़ सकता है कि नहीं?"

"नहीं"—हरिने गर्दन ऊपर उठाकर हेकड़ी जतायी।

"मालूम होता है कि तुम राजाके पेश हुए बगैर नहीं मानोगे।"

"नहीं मानूँगा, नहीं मानूँगा। एक बार क्या, लाख बार पेश कर दो।"

"अच्छा, सिपाहियो, इसे ले चलो राजाके पास।"

जब हरिको राज-दरबारमें पेश किया गया, तब राजाने पूछा—"क्यों बे हरिके बच्चे, तूने डाके डाले ?"

"हाँ महाराज।" हरिने बेपरवाईसे उत्तर दिया।

"क्यों ?"

"खानेको कुछ नहीं था।"

"तो प्रजाको लूटने लगे ?"

"और क्या करता, महाराज ?"

"तुम्हें किसीका डर न था ?"

"डर ?" हरिने मुस्करा कर कहा—"डर क्या होता है, महाराज ?"

"इसका तो यह मतलब हुआ कि तुम किसीसे भी नहीं डरते ?"

"ना महाराज, मैं किसीसे नहीं डरता।" हरि कह रहा था और दूसरे लड़के हँस रहे थे।

"राजासे भी नहीं ?"

"राजा ?" उसने निर्भीक दृष्टिसे इधर-उधर देखकर मुस्कराते हुए कहा—"जिस राजाको हमने खुद बनाया है, उससे डर कैसा ?"

"मालूम हुआ तुम राजद्रोही और बाग़ी हो। मैं तुम्हें फाँसीका हुक्म देता हूँ।"

"और मै डंकेकी चोट कहता हूँ, यह हुक्म फ़जूल है। मै न मानूँ। मै न मानूँ।"

हरिने "मै न मानूँ" कुछ इस ढंगसे कहा कि लड़कोंको रीछवालेका तमाशा स्मरण हो आया। पहले तो वे ठहाका मार कर हँसे, फिर पंजोंके बल उछल कर और चुटकियाँ बजा-बजाकर कहने लगे—"मैं न मानूँ। मैं न मानूँ।"

वे इस खेलसे उकता चुके थे। लेकिन राजा इसे बिगड़ने देने नहीं चाहता था। वह ऊँचे स्वरसे बोला—"मैं तुम्हारा राजा तुम्हें हुक्म...।"

हुक्मका शब्द अधूरा रह गया, क्योंकि ठीक उसी समय बहुत-सा रेत उड़कर राजाके मुँहमें आ पड़ा।

उधर छोटे बच्चे अपने खेत बो रहे थे। एक बालकने अपने खेतमें रेत बिखेरते हुए कहा—"मै चने बोता हूँ।" दूसरेने कहा—"मैं गेहूँ बोता हूँ।" तीसरा बोला—"मैं चावल बोता हूँ।" चौथेके हाथमें ही रेत रह गयी। वह समझ नहीं सका कि वह ऐसी कौन चीज़ बोए, जो उन सबसे अच्छी हो। सोचते-सोचते उसने आकाशकी ओर देखा, उसे नयी बात सूझी और अपने हाथका रेत ऊपरको बिखेरते हुए उसने कहा—"मैं तारे बोता हूँ।"

यह रेत उड़कर राजाके मुँहमें आ पड़ी। उसने बच्चोंको भिड़कना चाहा, लेकिन उसकी बात अधूरी रही। उसे थू थू करते देखकर सब लड़के कहकहे लगा रहे थे वह परेशान हो कर इधर-उधर देखने लगा।

उसे परेशान और इतने लड़कोंको हँसते देखकर बच्चोंको कुतूहल होने लगा। वे दोनों हाथोसे रेत उछालने लगे। हवा तेज थी। रेत उड़ उड़कर राजा पर पड़ने लगी। इस रेत और कहकहोंके बीचमें वहाँ बैठे रहना व्यर्थ था। वह गद्दी छोड़कर नीचे उतर आया।

"अहा हा! राजाने गद्दी छोड़ी! अहा ..हा...राजाने गद्दी छोड़ी।" सब चिल्लाने लगे।

जब यह शोर थमा, तो सबके सरदार हरिने कहा—"लाओ भई, अब कोई नया खेल खेलें, जिसमें न राजा हो, न चोर। सब बराबर हो और सभी खुश।"

सुरजू भगत

हम दफ्तरसे बाहर धूपमें बैठे थे। हरिसिंह उकडूँ बैठा कंकड़ोंसे खेल रहा था और साथही साथ हमसे मजाक भी किये जा रहा था। अचानक वह मुस्करा उठा। सामनेसे जो सुरजू भगत आ रहा था, उसकी ओर हमारा ध्यान दिलाकर उसने कहा—"लीजिए, आपको तमाशा दिखाऊँ।"

उसने कंकड़ एक ओर फेंक दिये और मुखमुद्राको गम्भीर बनानेके लिए बढी हुई दाढीपर हाथ फेरा और ठोड़ीके नीचे जो गाँठ लगा रखी थी, उसे अँगूठेसे बालोंके अन्दर ठोंसा। जब सुरजू भगत करीब आ गया, तो हरिसिंहने संजीदगीसे कहा,—

"सुरजू भगत, सलाम।"

"सलाम नहीं बाबू, राम राम कहो, राम राम।"

"पर सुरजू भगत, सलाम ही कहने में क्या हर्ज है?"

"हर्ज क्यों नहीं बाबू? भगवानने जिसे जिस मजहबमें रखा है, उसीमें रहना ठीक है।"

"और जो लोग भगवानको मानतेही नहीं?"

"राम राम—"सुरजू भगतने कानोपर हाथ धरे—"भगवानको कौन नहीं मानता बाबू?"

"ये हरदेवबाबू नहीं मानते। पूछ लो इनसे।"—हरिसिंहने मेरी तरफ इशारा किया।

"बिलकुल झूठ, मैं तो मानता हूँ सुरजू भगत"—मैंने मुस्कराते हुए इस ढंगसे कहा

कि जिससे हरिसिंहकी बातका विरोध कम और अनुमोदन अधिक होता था। पर सुरजू भगतने प्रसन्न होकर कहा—

"ठीक है बाबू। मैं जानता हूँ, भगवानको सब मानते हैं। सरदार तो मजाक करता है।"

सुरजू भगत अपने कमरेकी ओर चल दिया और सरदार, जो सच्ची बात कहते वाकई मजाक कर रहा था, खिलखिलाकर हँसने लगा। हमने भी हँसना शुरू किया, लेकिन सुरजू भगतकी बातपर कम और हरिसिंहके पोपले मुँहपर अधिक। क्योंकि उसने बनावटी दाँत लगवानेके लिए असली दाँत निकलवा दिये थे।

हम लोग प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके दफ्तरमें थे। नौकर क्लर्कोंका काम करते हुए भी क्लर्क नहीं कहलाते थे। उदाहरणार्थ मुझे हेडक्लार्कके बजाय आफिस सेक्रेटरी कहा जाता था। कारण शायद यह हो, कि दफ्तरके कामके अतिरिक्त मैं जलसोंमें भाषण किया करता और जुलूसोंमें नारे लगाया करता था, इस उम्मीदसे कि कभी मैं भी लीडर बनूँगा। जनरल सेक्रेटरी अथवा असिस्टेंट इलेक्शन बोर्डका चैयरमैन चुना जाऊँगा। कारमें बैठकर आया करूँगा और ऊपरकी मंजिलमें जो सुन्दर कमरे बने हैं, उनमें बैठकर राजनीतिक समस्याएँ सुलझाया करूँगा।

हममेंसे हरेककी आत्मामें यही शोला कम्पित था और हरेक अपने आपको ऊँचा उठानेके लिए प्रयत्नशील था।

हमारा दफ्तर एक विशाल बिल्डिंगमे स्थित था। बीचमे बहुत बड़ा हाल था, जिसमे लेक्चर हुआ करते थे। सामने पूर्वमें खुला मैदान था। उत्तर, दक्षिण और पश्चिममें दो तीन मंजिलवाली इमारतें थीं, जिनकी बाहरी सजधज देखने ही से अनुमान लगाया जा सकता था, कि उनमें भाग्यवान लोग ही बसते हैं। हालके उत्तर-पूर्वी बाजूके साथ जो लम्बे चौड़े कमरे बने थे, उनमें दफ्तर था। दफ्तरके बिलकुल सामने इसी नमूनेके इतने ही कमरे बने थे, जिनमें वर्कर रहते थे। इन दोनों बाजुओंके दर्मियान हालकी लम्बाईके बराबर आँगननुमा खाली जगह थी, जिसमें कई एक वृक्ष उगे थे। जमीन हमवार न होने के कारण वर्षाका पानी वृक्षोंके तले ठहर जाता था, जिससे कमरोंमें सीड़ रहती थी। दीवारोंको लूनी लग जाती थी।

इन दोनों बाजुओंको आपसमें मिलानेवाली उत्तरकी ओर छोटे छोटे कमरोंकी पंक्ति थी। इन कमरोंकी दशा बहुतही खराब थी। उनके अन्दर बरसातका तो कहना ही क्या, जेठ-बैसाखके महीनोंमें भी सीड़ रहती थी। धूपका गुजर कभी नहीं होता था। साँस लेते दम घुटता था, नाकमें खुजली उठती थी, जैसे हवामें नसवार अथवा कोई तेजाब छिड़का हो। इन कमरोंका किराया बहुत ही कम था। कोई डेढ़ दो रुपया महीना। इनमें दफ्तरोंके चपरासी, मामूली खोमचेवाले

अथवा इसी वर्गके दूसरे लोग रहते थे। हमें उनके और उन्हे हमारे काम से कोई सरोकार नहीं था।

सुरजू भगत भी इन किरायेदारोंमेंसे एक था और वह छ सात सालसे लगातार वहाँ रह रहा था। उसे मै आते जाते जरूर देखा करता था लेकिन आजतक उससे बात करनेका मौका न पड़ा था। सिर्फ हरिसिंहने एक दो बार मज़ाक मज़ाक में उसकी ओर ध्यान आकर्षित किया था। सुरजू भगत जब नलपर बर्तन साफ करने आता तो वह टोकता—"सुरजू भगत, खाना बनाने लगे हो?"

"हाँ बाबू!"

"हमें भी खिलाओगे?"

"जरूर बाबू, तुम भी खाना।"

"पर एक शर्त है!"

सुरजू भगत मुसकरा देता क्योंकि वह जानता था, कि सरदार मज़ाक कर रहा है। एक बार उसने पूछकर देख लिया था कि वह शर्त क्या है। तो सरदारने मुर्ग़ी बनानेकी फर्माइश की थी और सुरजू भगतने कानोंपर हाथ धर लिये थे।

हरिसिंह ही एक ऐसा आदमी था, जिसने इन किरायेदारों और हमारे दर्मियान स्थल-डमरूमध्य अथवा जल-डमरूमध्यकी भाँति बारीक-सा रिश्ता कायम कर रखा था। वह इस बिल्डिंगका मैनेजर था। इन लोगोंसे किराया वसूल करना उसीका काम था। इसके अलावा जहाँ हम दफ्तर बन्द होनेके बाद चले जाते, वहाँ वह दिन रात यहीं रहता था। उन लोगोंके झगड़ों और कमरोंके सम्बन्धमें उनकी शिकायतें सुनता था। वह उनके गुण-स्वभावसे भलीभाँति परिचित था। हम लोगोंसे बातें करते समय वह इन लोगोंका जिक्र भी अकसर बीचमें ले आता था। कभी उनके बारेमें कोई लतीफा सुना दिया अथवा अगर हममेंसे किसीको नीचा दिखाना अभिप्रेत हुआ तो झट कह दिया—"वाह वा, क्या पायेदार बात कही है आपने! मंगू खोमचेवालेको भी मात कर दिया।"

वहाँ जितने आदमी रहते थे हरिसिंह उन सबसे छेड़छाड़ और हँसी मज़ाक किया करता था। वह सबके चोर दरवाज़ोंसे वाकिफ था और जानता था कि कौनसी चोट किस जगह पड़ेगी। लेकिन उसे दिल्लगीकी सबसे अधिक सामग्री सुरजू भगत जुटाता था। कारण, वह पुराना किरायेदार बुजुर्ग था। उसकी आत्मामें इतने चोर दरवाज़े खुलते थे, कि हरिसिंह जब चाहे तब किसी न किसी दरवाज़ेसे भीतर दाखिल हो सकता था। सुरजू भगतकी निरीहता इन दरवाज़ोंको हरिसिंहकी गिद्ध-दृष्टिसे छिपाये रखनेमें असमर्थ थी।

हरिसिंहको यों अकसर मजाक करते देखकर हमने भी सुरजूसे मजाक करना शुरू किया। लेकिन जो आनन्द और उल्लास हरिसिंहके मजाक उत्पन्न करते, हमारे मजाक उससे वंचित रहते थे। एक मर्तबा मैंने उसे छेड़नेकी नियतसे कहा,—"सुनाओ सुरजू भगत, तुम्हारी बीबी की तो खेर खबर नहीं आयी?"

उसने अजनबी निगाहोंसे मेरी ओर देखा, और भावुकतारिक्त उत्तर दिया—"नहीं बाबू।"

मै लज्जित होकर रह गया। मैंने महसूस किया कि मै लाख कोशिश करने पर भी उसकी आत्माको छू नही सकता। उसके और मेरे मध्य एक दीवार खड़ी है, जो चीनकी दीवारसे कही दुर्लंध्य और कही लम्बी-चौड़ी है। वरना एक बार हरिसिंहने मेरे सामने जब यह सवाल किया था तो वह इस तरह पिघल गया था जिस तरह तनिक आँच लगनेसे मोम पिघल जाता है। और फूट पड़ा था,—"नही बाबू कोई खेर-खबर नही आयी। मुझे उसके दुःख-सुखका ही ज्ञान हो जाता!"

और उसने मुँह दूसरी ओर घुमाकर धोतीके आँचलसे आँसू पोंछ लिये थे। जब वह घटना स्मरण हो आती है, तब मै सोचने लगता हूँ कि मनुष्यकी आत्माके ज़ख़्मको कुरेदना हमारी कौन सी हास्य-भावनाको सन्तुष्ट करता है।

उस दिन हरिसिंहकी जबानसे मालूम हुआ था कि कोई चार साढ़े चार सालका अर्सा हुआ कि सुरजू भगतने अपने किसी भाईबन्दकी राँड औरतको घरमें डाल लिया था। गोपी जिसे हम सुरजू भगतका बेटा समझते थे, पहले पतिकी सन्तान था और उस औरतके साथ आया था। उसने पाँच छः महीने बड़े आरामसे सुरजू भगतके साथ गुजारे। फिर वह एक दिन अकस्मात् गोपीको यहाँ छोड़कर आप किसी मर्दके साथ चली गयी। कमरेके भीतर चाहे लाख तकरार हुई हो, पर बाहर उसे कभी सुरजू भगतसे लड़ते-झगड़ते नहीं देखा था।

औरतको यद्यपि गये बहुत दिन बीत गये थे, पर सुरजू भगतको विश्वास था कि चाहे वह कहीं चली जाये एक न एक दिन अवश्य लौट आएगी। मुहब्बतका खिंचाव उसे सात समुद्रपार भी चैन नहीं लेने देगा।

उसे चैन मिले, न मिले लेकिन सुरजू भगत उसकी यादमें अवश्य बेचैन रहता था। इस बेचैनीमें कुछ क्षण ऐसे भी आते थे, कि वह एकदम पागल हो जाता था, अपने आप पर कुढ़ता, गोपीपर नाराज होता और क्रोधवश उसे पीटने लगता, पानी तक गलेसे न उतारता। विषाद और क्लेशकी मूर्ति बना बैठा रहता।

हरिसिंह उसकी सूरत देखते ही कैफियत भाँप जाता, चुपकेसे उसके समीप जा बैठता और सहानुभूतिसे पूछता—"सुनाओ सुरजू भगत, बहुत उदास बैठे हो।

बीवीकी याद आ रही है ?"

सुरजू भगत करुणा दृष्टिसे उसकी ओर देखता और देखता ही रहता पर कहने को कहता—"नहीं बाबू।"

हरिसिंह इस इनकार पर मन ही मन मुस्करा उठता। लेकिन अनजान बनकर कहता—"बुजुर्गोंने सच कहा है सुरजू भगत, औरतजात बड़ी बेवफा होती है।"

"सच तो कहा है, पर वह औरत नहीं थी बाबू! देवी थी, देवी। कुछ कह दो, कुछ दे दो, कोई शिकायत नहीं, कोई तकरार नहीं।"

"फिर भी चली गयी? इसका मतलब है तुम उसे बहुत ही तंग करते थे।"

"तंग करनेकी बात नहीं बाबू! किस्मतकी बात है। होनी बड़ी बलवान् है।" उसकी गर्दन आप ही आप हिलने लगती, मूछें फरकती, समस्त शरीरमें कँपकँपी-सी होने लगती। चेहरे पर आर्द्रता छा जाती। ऐसा मालूम होने लगता कि आंखोंसे आँसू बह निकलेंगे। एक तूफानी क्षण उसकी अन्तरात्मामें हलचल मचा देता। थोड़ी देर चुप रहकर और सँभलकर वह अखंड विश्वाससे कहता—"चली तो गयी पर पछताती होगी।"

फिर वह खामोश हो जाता। हरिसिंह भी समयकी गम्भीरताको समझकर चुप रहता। वह सुरजू भगतकी तरह मुखाकृति गंभीर बना लेता और निःश्वास छोड़कर दुःखपूर्ण स्वरमें कहता,—"एक बात तो मैने भी देखी है सुरजू भगत, वह तुम्हे प्यार बहुत करती थी।"

"हाँ बाबू, बहुत प्यार करती थी"—सुरजू भगतकी बन्द आँखें खुल जाती।

"शायद फिर लौट आए।"

"बाबू, मन तो मेरा भी यही कहता है कि वह जरूर आएगी।"

कहते कहते सुरजू भगतका चेहरा चमक उठता। लेकिन हरिसिंहको शरारत सूझती—"लौट आए तो क्या तुम उसे घरमें रख लोगे?"

"रख क्यों नहीं लूँगा बाबू? कोई बैर थोड़े ही है?"

उसकी निगाहें धरतीपर बिछ जातीं, जैसे वह पत्नीके आगमनका स्वागत कर रहा हो और फिर इन निगाहोंको समेटकर लम्बी साँस छोड़ता—"गलती इन्सानसे हो ही जाती है।"

"सुरजू भगत, यह तो मुझे भी विश्वास है कि वह जरूर आएगी।"

हरिसिह दृढ़ और शात भावसे कहता और सुरजू भगत इच्छाकी प्रतिमा बनकर सुनता। जैसे कहनेवाला मनुष्य न होकर ब्रह्मा हो, जिसके मुखसे निकला झूठ भी सत्य हो जाता है।

हरिसिंह और सहारा देता—"अब तक आ जाती, पर तुमसे डरती है, कहीं मुझे पीट न डाले, कहीं मुझे घरमें न रखे।"

"डरनेकी कौन बात है बाबू ? मुझे खैर-खबर भेज देती। मै जाकर उसे ले आता।"

हरिसिंहके भीतरका आदमी हँसीसे लोटपोट हो जाता। लेकिन बाहरी गम्भीरतामें जरा फर्क न पड़ता—"खैर खबर भी आएगी। लेकिन एक बात याद रखो कि अगर तुमने गोपी को पीटा तो वह आकर तुमसे लड़ेगी।"

सुरजू भगत मुस्करा देता—"मै क्यों पीटूँगा बाबू ? गोपी उसका ही नहीं मेरा भी बेटा है।" और वह दार्शनिक भावसे कहता—"कोई पिछले जन्मका सम्बन्ध होता है बाबू, तब कोई किसीसे आकर मिलता है। हम इसी जन्मकी बात सोचकर व्यर्थमें दु खी होते है।"

सुरजू भगत पिछले जन्म और उसके सम्बधोंमें विश्वास रखता था। इसलिए उसने गोपीको वाकई अपना बेटा समझ रखा था और वह उसे प्यार भी करता था। अगर क्रोधके क्षणोंकी प्यारके समयसे तुलना की जाए तो वे न गिने जानेके बराबर थे। जब पत्नीकी दु खद स्मृति उसके जीवनको कटुतासे भर देती थी, तब वह उसे थोड़ा बहुत मार-पीटकर मनका बोझ हलका करता था और यह उसके बसकी बात न थी। अथवा वह उस समय नाराज होता था, जब गोपी खाने बैठता था तो खाये ही जाता था। सस्ते समयमें भी दो आनेका दाल-भात अकेला हड़प कर जाता था, हालाँकि सुरजू भगत उसे लाख बार समझा चुका था कि अधिक खाने और अधिक सोनेसे आदमीकी उम्र कम हो जाती है।

सुरजू भगत स्वयं सख्तीसे इस सिद्धान्तका पालन करता था। वह कम सोता और कम खाता था। पर इस तपस्याका उद्देश्य लम्बी ज़िन्दगीकी अभिलाषा कदाचित नहीं थी बल्कि इसकी तहमें कोई और ही भावना ओतप्रोत थी।

हरिसिंहने बातों ही बातोंमें ज़िक्र किया था कि उसने अपनी कोठरीके अन्दर जमीन खोदकर एक मटकी गाड़ रखी है। जितने पैसे बचाता है, उस मटकीमें डाल देता है। हर रोज सवेरे उठकर उस जगहको लीप-पोतकर उसकी पूजा करता है। मुँहसे कोई मन्त्र उच्चारण करते हुए बार बार माथा टेकता है। जैसे उस जगह के अन्दर किसी देवताका निवास हो, जैसे उस मटकीमें उसका भगवान् छिपा बैठा हो।

हरिसिंहका मकसद महज एक लतीफा बयान करना था। लेकिन सुरजू भगत को उस जगहसे प्रेम था। उसके पड़ोसी तुलसीने कई मर्तबा देखा था कि वह रात

को सोते-सोते घबड़ा उठता। धोतीके आँचलमें लिपटी चाबी निकालता, धीरेसे दरवाजा खोलकर कमरेके भीतर जाता। उस जगहपर हाथ फेरकर इत्मीनानकी साँस लेता और फिर उसको बार-बार माथेसे छूकर रामनामका जाप करता। मन ही मन प्रसन्न होता, जैसे उसे कोई वरदान मिल रहा हो। जैसे आत्मामें मानवता और महानता मचल उठी हो।

फिर दबे पाँव बाहर निकलकर कोठरीको पहलेकी तरह ताला लगाता और चाबी आँचलमें बाँधकर और नाभिके निकट धोतीमें बाँधकर आरामसे सो जाता।

और लोग गर्मीके दिनोमें हॉलके सामने खुले मैदानमें सोते थे, लेकिन उसे गर्मीकी ज़रा परवा नहीं थी। उसे अपनी चारपाई कोठरीके दरवाजेसे परे हटाना किसी तरह भी पसन्द नही था। क्योंकि इस स्थान और उसकी आत्माके बीच एक अटूट सम्बन्ध स्थापित था। रातको सोतेसे उठकर इस जगहको नमस्कार कर लेने से शान्ति प्राप्त होती थी।

अब कुछ दिनोंसे एक मुश्किल आ पड़ी थी। उसकी पहली नौकरी छूट गयी थी। एक दूसरी जगह काम मिला था। और वहाँ रातको पहरेपर जाना पड़ता था। जब पहले दिन रातको नौ दस बजे वह कामपर चला, तो अपनी कोठरीको अँधेरेमें एकान्त छोड़ते अत्यन्त द्विविधा और असमंजसमें पड़ गया था। ताला लगाकर दो-चार बार जोरसे खींचा, झटका और तसल्ली कर ली कि भली भाँति लग गया है। फिर भगवानके नामका उच्चारण इस ढंगमें किया, जैसे किसी अलौकिक शक्ति को सहायताके लिए पुकार रहा हो, जैसे कह रहा हो कि मेरे सिवा जो कोई शख्स इस तालेको हाथ लगाएगा वह इसी जगह भस्म हो जाएगा।

आहिस्ता आहिस्ता उसे कमरा सूना छोड़कर जानेका अभ्यास पड़ गया। और तसल्लीका एक दूसरा पहलू भी निकल आया। वह नौकरीसे लौटकर आठ-नौ बजेतक सोता। बाकी तमाम दिन फ़ुर्सत रहती थी। इधर उधर मज़दूरी करके दो-चार आने कमा लेता था। मसलन हमारे दफ्तरमें बाहरके लोग रहते थे या हमें खुद कहीं न कही जाना होता था। टाँगा करीब नहीं मिलता था। सुरजू भगत सामान उठाकर सड़कतक छोड़ आता था। इस प्रकार उसे जो कुछ मिल जाता उसी पर फूला न समाता क्योंकि यह उसकी फालतू आमदनी थी जबकि खर्च बदस्तूर पहले ही जितना था। वही दोनों काल दाल भातका खाना और दिन भर में एक दो पैसेका तम्बाकू जल जाता था। दूसरी ओर ईंधनमें काफी बचत हो जाती थी।

ईंधनपर वह कभी एक पैसा भी खर्च नहीं करता था। सड़कपर आते जाते

गोबर उपला उठा लाता। हमारे दफ़्तरके कूड़ा करकटमेंसे बेकार दफ्तियाँ, गत्ते और कागज़के टुकड़े आदि चुन लेता। आँगनमें जो वृक्ष उगे थे उनसे भी काफ़ी लकड़ी हाथ लग जाती। वह उनके नीचे पड़े पत्ते और ज़राज़रासी टहनियाँतक जमा कर लेता और उन्हें धो सुखाकर जलानेके काममें लाता।

एक बार इस धोये हुए ईंधनने सुरजू भगतको बड़ा धोखा दिया। जब वह रसोई बना रहा था तो उसमेंसे एक दतून निकल आयी जो किसीने चबाकर फेंक दी थी। सारी रसोई भ्रष्ट हो गयी। उसने दाल भात उठाकर बाहर फेंक दिया। चौका फिरसे लगाया। इस प्रकार रसोई तो दूसरी बार शुद्ध हो गयी पर उसके मनकी ग्लानि दूर न हुई। भोजन दुबारा न बन सका। वह और गोपी शामतक भूखे रहे।

खाना शायद शामको भी न बनता पर उस दिन गोपी एक मुसाफिरका बेग टाँगेतक छोड़ आया था। इस कारण मुसाफिरने उसे जो एक आना दिया था वह उसने लाकर पिताके हाथमें दे दिया। सुरजू भगत इतना खुश हुआ कि उसके मनकी ग्लानि एकदम धुल गयी और वह उसी समय भोजन तैयार करनेमें लग गया। उसे रह रह कर ख्याल आ रहा था कि मेरा बेटा गोपी भूखा है। उसने सुबहसे कुछ नहीं खाया।

गोपी जब एक पैसा भी कमाकर लाता सुरजू भगतके मनमें उसके प्रति विशुद्ध प्रेम उत्पन्न होता। उसे विश्वास था कि भगवान नेक कमाईको बरकत देता है। अब जबकि उसकी कमाईमें काफी बढ़ती हो गयी थी और उसकी मटकीकी रकम यकायक सौ तक पहुँच गयी थी तो उसकी आत्माका प्रत्येक प्रदेश प्रसन्नतासे जगमगा उठा था। सौ रुपये! सौ रुपये! एकदम इतनी बड़ी रकम! उसने सौ रुपये पहले कभी नहीं देखे थे। अब यह रकम बढ़ती जायगी। भगवान्की कृपाकी दरकार थी, वह उसे प्राप्त हो गयी। न जाने कितना धन उसके पास जमा हो जाये। उसकी महिमा, उसकी माया कौन जाने।

धनके फेरमें पड़कर सुरजू भगत अतीतका दुःख भूल रहा था। उसे अब पत्नीकी याद नहीं सताती थी। वह उसके लिए दुखी नहीं होता था। गोपीको नहीं पीटता था। हरिसिंहके मज़ाक सुनकर अब उसकी मूछोंके नीचे हल्की सी मुसकराहट दौड़ जाती थी, जो उसकी आत्मामें मचल रही प्रसन्नताको प्रकट करती थी। पहले जब उसकी नजर इर्द गिर्दके मकानोंपर पड़ती और वह उसमें रहनेवालोंके ठाट-बाट देखता और हरिसिंहको यह कहते सुनता कि सुरजू भगत तुम तो भगवान्को मानते हो। कहो न, हमें भी इसी ठाठसे रखें। तो वह हसरत भरे लहजेमें जवाब देता—"हमारी किस्मतमें यह सब कुछ नहीं लिखा बाबू!"

"क्यों नहीं लिखा ? हमने क्या भगवान्के बैल मारे हैं ?"

"अपने अपने कर्मोंका फल है बाबू ! नेक काम करें तो हमें भी अगले जन्ममें यह सब कुछ मिल सकता है।"

लेकिन अब उसके मनमें अपने सपनोंकी पूर्ति अगले जन्ममें देखनेके बजाय इस जन्ममें देखनेकी आशा उत्पन्न हो गयी थी। अब वह इन इमारतोंको देखकर सोचा करता था कि मेरे पास भी शीघ्र ही बहुत सा रुपया होगा। मैं भी इसी प्रकार ठाठसे रहा करूँगा। दान दूँगा। तीर्थ-यात्राको जाऊँगा। धर्म भी कमाऊँगा और दिलके सब अरमान भी पूरे करूँगा। इन लोगों को भी भगवान्ने दिया है. मुझे भी भगवान् देगा। भगवान् जब देनेपर आता है तो छप्पड़ फाड़कर देता है।

सुरजू भगतके कुछ भाईबन्द चौबुर्जीकी ओर रहते थे। उनकी बस्तीके निकट एक ब्राह्मणका घर था। वह उन्हें सत्यनारायणकी कथा सुनाता, मजहबी रस्में अदा करता और दान दक्षिणा लिया करता था। सुरजू भगतने उस ब्राह्मणको अक्सर कहते सुना था कि अगर एक गरीब आदमी अपनी नेक कमाईमेंसे एक रुपया दान करता है तो उसे उतना ही फल मिलता है जितना एक अमीर आदमीको लाख रुपया देकर। जितना कोई दान देता है, उतना ही उसका धन बढ़ता है।

कथा समाप्त होनेके पश्चात् और लोगोंकी तरह सुरजू भगतने भी इस ब्राह्मणको कई बार एक एक रुपया दान दिया था। अब जब कि उसकी आमदनी बढ़ रही थी तो उसे विश्वास हो गया था कि इस दानकी बदौलत उसकी कमाईको बरकत मिली है। जैसे जैसे मटकीमें धन बढ़ रहा था सुरजू भगतके मनमें उस ब्राह्मणके प्रति श्रद्धा भी बढ़ रही थी। जब रकम सौ से अधिक हो गयी तो उसने ब्राह्मणको अपने घर पर निमन्त्रित किया। बाजारसे खालिस देशी घी लाकर पूड़ियाँ तलीं, हलवा बनाया। ब्राह्मण महाराजको खिला पिलाकर दक्षिणा दी। और फिर सवा रुपया पत्रेपर रखकर भविष्यके हालात पूछे। ब्राह्मणने सोच-विचारकर मीन-मेषका हिसाब लगाकर बताया कि इन दिनों सुरजू भगतपर भगवान् सत्यनारायणकी विशेष कृपा है। अगले दो-चार महीने बहुत ही शुभ हैं। उसे कहींसे इतना बड़ा लाभ प्राप्त होनेवाला है कि सब दुख दरिद्र धुल जाँयगे।

सुरजू भगत अपनी नेक कमाईके अतिरिक्त इस लाभ-प्राप्तिके सपने भी अकसर देखा करता था। हमारे पड़ोसमें हॉलके बायी ओर एक नयी इमारत बन रही थी सीमेंट ही सीमेंट नजर आता था। फौलादकी तरह मजबूत दीवारें ऊपर उठ रही थी। दो मंजिलें बन चुकी थीं और तीसरी बन रही थी। घरवाले तीर्थयात्रा पर गये थे, नौकर चाकर काम कर रहे थे। सुरजू भगत इस इमारतको भी लाभप्राप्तिका चम-

रकार समझता था और इसे लोलुप दृष्टिसे देखा करता था। वर्ना कोई आदमी मेहनत मजदूरी करके यह भव्य भवन नहीं बनवा सकता।

देखा सुरजू भगत, कैसी आलीशान इमारत बनायी है ?

हाँ बाबू !—सुरजू भगतका स्वर हरिसिंहसे सर्वथा भिन्न होता—जिसे भगवान् ने धन दिया है वह क्यों न बनाये।

हूँ, समझा ! तुम भी अब धनवाले बन रहे हो—हरिसिंहने चोट की।

सुरजू भगत जवाबमें मुस्करा दिया। इस चोटसे दुखके बजाय उसे एक प्रकार का सुख अनुभव हुआ। वाकई वह धनवान् बन रहा था और इससे अधिक बननेकी आशा रखता था। लेकिन गुप्त मटकीमे रुपये जमा करनेका रहस्य उसने अपने अति-रिक्त सारी दुनियासे छिपा रखा था। जब कमरेमें बैठकर वह इस वाक्य पर विचार करने लगा तो शक गुजरा कि कहीं सरदारको यह रहस्य मालूम न हो, लेकिन सरदार की हास्य-वृत्तिका ध्यान करके उसने सन्देहको वहम समझकर मनको शांत किया। उसकी दानिस्तमें सरदार क्या, कोई भी व्यक्ति इस रहस्यको जान नहीं सकता। उसने यह रहस्य अपने बेटे गोपीसे भी छिपा रखा था। दिनके वक्त चारपाई कमरेमें इस प्रकार बिछाये रखता था कि सिरहानेका एक पाया उस जगहके ठीक ऊपर आता था। मटकीके ऊपर ढकना, ढकने पर मिट्टी और मिट्टीपर पाया। किसीको सुबहा भी नहीं हो सकता था कि सुरजू भगत यहाँ रुपये छिपाकर रखता है।

हाँ, उसने अपने पड़ोसी तुलसीकी उचटती-सी दृष्टि उस जगह पर पड़ती अवश्य देखी थी। कारण यह था कि वह प्रातःकाल पूजाके समय इस जगहको पोता करता था, जिससे वह गीली हो जाती थी और उसकी सील एक दायरेकी शकलमें पायेके गिर्द फैली रहती थी; और यह दायरा तुलसीका ध्यान इस ओर आकर्षित करता था। अब सुरजू भगतने यह व्यवस्था कर दी थी कि पानीका लोटा भरकर पायेके समीप रख छोड़ता था ताकि वह समझे कि जगह इसी कारण गीली रहती है।

और तुलसी यही कारण समझने भी लगा था। क्योंकि जब वह द्वार पर खड़ा सुरजू भगतसे बातें करता था तो उसकी निगाह सुरजू भगतके व्यक्तित्व पर केन्द्रित रहती थी। शायद उसे सुरजू भगतके काले नंगे शरीर पर मिट्टीरँगा जनेऊ भला मालूम होता था। और अगर निगाह कभी भटकी भी तो कोनेमें रखी नारियल की हुक्की पर जा पड़ती थी। इस जगहसे उसे कोई अनुराग नहीं था। पानीके लोटे को पड़ा देखनेसे प्रयोजन ही क्या था ?

वैसे भी सुरजू भगत अपने निकट रहनेवाले लोगोंमें तुलसीको सबसे भला आदमी खयाल करता था। क्योंकि वह भी उसीकी भाँति भगवानका भक्त था और

कहा करता था कि भगवानमें भरोसा रखनेवालेका कोई भी काम अटका नहीं रहता। रामनामके कारण नरसी भगतकी हुंडी पट गयी। भक्तिके वश भगवानने धन्ने जाटके ढोर चराये। गजराजकी पुकार सुनकर भगवान दौड़े आये और उसे मगरमच्छके मुँहसे छुड़ाया...

ऐसे नेक आदमी पर किसी प्रकारका सदेह करना पाप है। सुरजू भगत तो भगवानका धन्यवाद करता था कि उसे एक सज्जन व्यक्तिका पड़ोस मिला है, जो सदा मीठा बोलता है और दूसरोंके कड़ुवे बोल भी चुपचाप सहन कर लेता है। कड़ुवे बोल और कौन बोलता? हरिसिंह ही बोला करता था। वह उसके मुँह पर कहता—सुरजू तुम भगत हो और यह तुलसी बगुलाभगत है और फिर तुलसी मुस्करा देता।

तुलसी मुझसे एक बार अँग्रेजीमें एक दर्खास्त लिखवाकर ले गया था। उसके बाद जब कहीं मिलता, हाथ जोड़कर नमस्कार करता और बड़े ही आदर और नम्रता से पूछता—मेरे लायक कोई सेवा हो बाबूजी!

उसका यह सब व्यवहार देखकर मैंने एक दिन हरिसिंहसे कहा था—तुम्हारा यह किरायेदार बड़ा ही नेक है।

हाँ, बड़ा ही नेक है। कभी हाथ लग जायें तो जानोगे।

उसने झट उत्तर दिया और बताया कि वह दो पैसेके लिए भगवानकी सौ झूठी कस्में खा सकता है। एक बार मुझसे किराया लेनेमें गफलत हो गयी। पहलीके बजाय दस बारह तारीखको किराया माँगा तो बोला—मैं दे चुका हूँ। जब रसीद दिखानेको कहा तो जवाब मिला—

"भगवानकी कस्म, आप रसीद काटना भूल गये हैं। अगर मैं झूठ बोलूँ तो भगवान मुझे नाश करदे।" भगवानकी कस्म रसीदसे ज्यादा मुस्तनिद थी। मैं चुप हो गया।

हरिसिंहने दसों बातें और बतायी, जिनसे उसकी बेईमानी सिद्ध होती थी। लेकिन सुरजू भगतको इन सब बातोंसे कोई सरोकार नहीं था। तुलसी उसका पड़ोसी था। प्यार और मुहब्बतसे पेश आता था और भगवानका भक्त था। सुरजू भगत उसे अपना भाई समझता था। अब जबकि उसके पास रुपया जमा हो रहा था, वह अपनी श्रेणीसे ऊँचा उठ रहा था, उसके मनमें अपने प्रति गोपीके प्रति और समस्त संसारके प्रति प्रेम उत्पन्न हो रहा था। वह अपने पड़ोसीको क्यों सदिग्ध दृष्टिसे देखता?

आज ही क्यों, उसने तुलसीको कभी भी उपेक्षा और घृणासे नहीं देखा। दरअसल ऐसा करना भक्तिके विरुद्ध था और सुरजू भगतको फुर्सत ही नहीं थी।

पहले वह राम-नाम जपनेमें मग्न रहता था और अब पैसे गिननेमें व्यस्त रहता था। उसे किसीकी बुराई-भलाईसे मतलब ? वह अपना लोक-परलोक सुधारनेमें लगा था। उसकी आत्मामें सुन्दर सपने मचल रहे थे। उसका समय दान-धर्ममें व्यतीत होता था।

लेकिन एक दिन उसके सब सपने धरे रह गये।

वह पहरा देकर घर लौटा था। आँखें नींदसे बोझिल हो रही थीं। चाहता था कि चारपाई पर पड़कर सो रहूँ। लेकिन सोनेसे पहले जब उसने, स्वभाववश, पायेके नीचेकी जगह पर हाथ फेरा, तो ज़मीन खुदी हुई थी। उसका दिल जोर-जोरसे धड़कने लगा। हाथ खाली मटकीमें घूम रहा था और वह चिल्ला रहा था—'एक-सौ पन्द्रह रुपये सवा सात आने।' जिस लक्ष्मीकी वह इतनी मुस्तैदी और श्रद्धासे पूजा करता रहा था, वह छिनाल औरतकी भाँति उसे छोड़कर, चली गयी। आधे पेट खाकर, शरीरसे रक्तकी बूँद बूँद निचोड़कर उसने यह एक-सौ पन्द्रह रुपये सवा सात आने जमा किये थे। जमा किये थे कि लोक सुधरेगा, परलोक सुधरेगा। उन्हें देख-देखकर वह औरतका गम भूल गया था। आज वेही रुपये वहाँ मौजूद नहीं थे, मटकीमें हाथ घुमा-घुमाकर और उसे खाली पाकर उसपर, दीवानगी और वहशत तारी हो रही थीं। किसीको कत्ल कर दे, आत्म हत्या कर डाले।

इस क्रोधावस्थामें उसने गोपीको जा दबोचा। वह पड़ा बेसुध सो रहा था। सुरजू भगतने हठात् पीटना शुरू किया। "बदजात, मेरा खाकर मेरा ही खून किया। बता बता, कहाँ छिपाये हैं रुपये ?"

वह गरीब पिटता और झुँझलाता रहा, रुपयोंकी बात क्या बताता ? उसे तो इतना भी पता नहीं था कि सुरजू भगत रुपये जमा कर रहा है।

शोर सुनकर दूसरे लोग और हरिसिंह भी जाग उठा। उसने दौड़कर सुरजू भगत का हाथ पकड़ा। शरीर थर-थर काँप रहा था, मुँहसे झाग निकल रही थी और वह चिल्ला रहा था—"एक सौ पन्द्रह रुपये सवा सात आने !"

सारी बात समझकर हरिसिंहने कहा—"इस बेचारेको क्यों पीटते हो ? किसी अड़ोसी-पड़ोसीने चुराये होंगे। थानेमें जाकर रपट लिखाओ।"

डूबतेको तिनकेका सहारा मिला। वह थानेकी ओर चल दिया। डेढ़ दो घंटे इन्तजारके बाद रपट लिखवायी। जब थानेवालोंने पूछा कि तुम्हारा किसी पर संदेह भी है तो वह कुछ सोच नहीं सका। सिर खुजलाकर बदहवासीके आलममें बोला—"एक सौ पन्द्रह सवा सात आने।"

"एक सौ पंद्रह रुपये तो सुन लिया। हम पूछने हैं कि आस-पास कोई और

रहता था जो तुम्हें रुपये धरते देखता हो। तुम्हें किसी पर शक है?"

"और तो किसी पर शक नहीं सरकार! मेरा बेटा गोपी साथ रहता है। बड़ा आवारा है। वही ले गया होगा। बहुतेरा पूछा पर कुछ नहीं बताता। एक-सौ पन्द्रह रुपये सवा सात आने।"

थानेवालोंने गोपीको बुलाया, खूब डाँटा। लेकिन वह मिट्टीका बुत बना खड़ा रहा। थानेवाले भी बड़े घाघ होते हैं। जल्द ही समझ गये कि गोपी सर्वथा निरपराध और मासूम है। सुरजू भगतका दिमाग चल गया है।

हरिसिंहको बड़ा अफसोस हुआ कि सुरजू भगतने थानेमें जाकर भी गोपीका नाम लिया, हालाँकि उसने इशारा कर दिया था कि रुपये किसी अड़ोसी पड़ोसीने चुराये हैं। जब सुरजू भगत थानेसे लौटकर आया और रोने पीटने लगा, तो उसने स्पष्ट शब्दोंमें कहा—"क्यो रोते पीटते हो और क्यों गोपीके पीछे पड़े हो? तुम्हारे रुपये तुलसीने चुराये हैं।"

सुरजूने हाथ मले—राम राम, उसने चोरी की है?

"हाँ, उसने चोरी की है। अगर मुझे अख्तियार हो, तो मै सब रुपये उगलवा सकता हूँ। तुम थानेमें जाकर उसीका नाम लो।"

हरिसिंहने कुछ इस दृढतासे कहा, जैसे उसने तुलसीको चोरी करते आँखों देखा हो। सुरजू भगत मान गया और वह थाने पहुँचा लेकिन थानेवालोंने उसकी बात सुननेसे इनकार कर दिया और डपटकर कहा—"चल भाग यहाँसे। पागल कहीं का। कभी किसीका नाम लेता है और कभी किसीका। हम तेरे सौ रुपल्लोंके लिए दुनिया भरको कैसे बाँध लें?"

थानेदारके लिए जो सौ रुपल्ली थे, सुरजू भगतकी जिन्दगीका सहारा था, उम्र भरकी पूँजी थी। उसने अपने एक एक रुपयेको अमीर आदमीके लाख लाख रुपयेकी तरह सीनेसे चिपकाकर रखा था, क्योंकि वह जानता था कि अगर कोई गरीब आदमी एक रुपया दान करे तो उसे उतना ही फल मिलता है जितना एक अमीर आदमीको लाख रुपये दान देकर। इन रुपयोंको देखकर उसकी आँखें आशा और प्रतिभासे चमक उठती थीं। इस मासके अन्तमे, एक सौ पन्द्रह रुपये सवा सात आने एक सौ बीस रुपये हो जायेंगे। यह बात सोचकर उसे कितनी शान्ति और कितना सुख मिलता था। वह अपने सौभाग्य पर गर्व करता था और सौभाग्यकी कल्पना उसे एक दूसरे ही संसारमे ले जाती थी, जहाँ उसकी नज़रोंके सामने जगमग-जगमग रुपयोंके ढेर लगे होते थे। लाखों, करोड़ों, बेशुमार रुपये! कितना खुशकिस्मत है वह, उसका सिर अतुल श्रद्धासे उस ब्राह्मणके चरणोंमें झुक जाता, जिसने उसे लाभ-प्राप्तिका वरदान दिया था।

लेकिन अकस्मात् इस सौभाग्यकी बुनियादें ढह गयीं। वह संसारमें सबसे अधिक अभागा व्यक्ति था। और नहीं तो उसके ये एक सौ पन्द्रह रुपये सवा सात आने ही सुरक्षित रहते। वह थोड़े बहुत और जमा कर लेता। गंगास्नानको जाता। सामर्थ्यानुसार दान करता। यह लोक नहीं तो परलोक सुधर जाता। इस जन्ममें दुःख देखा है, अगले जन्ममें तो सुख मिलता। लेकिन अब वह यह सब कुछ नहीं देख सकेगा। वह कितना अभागा था!

उसके भीतर जो शोला प्रदीप्त था, वह बुझ गया।

हॉलके सामने खुले मैदानमें शहतूतका एक पेड़ था, जिसे न जाने कौन सा रोग लगा था कि वसंतके दिनोंमें भी उसके एक ओर गिनतीके चन्द हरे पत्ते फूटते थे। इस वक्त वे भी नहीं थे। टुंड मुंड सूखा खड़ा था। सुरजू भगत थानेसे लौटकर इसी पेड़के नीचे बैठ गया और आहें भरने लगा। जितनी बार उसके अन्दरकी सांस बाहर आती थी उतनी ही बार मुँहसे यह शब्द भी निकलते थे—"एक सौ पन्द्रह रुपये सवा सात आने!"

हमने उसे लाख समझाया कि उठो, नहा धोकर दाल भात बनाओ। दो कौर खाकर ठण्डा पानी पियो। सब्रका घूँट भर लो। खाली पेटमें गर्मी भर जायेगी। लेकिन वह किसीकी एक नहीं सुनता था। सर्द आहें भरता था, और अपनी ही रट लगाये जाता था—"एक सौ पन्द्रह रुपये..."

उसे यों आहें भरते देखकर सारी बस्तीमें मातम छा गया। हरिसिंह जो उसकी गुम शुदा बीबीका जिक्र छेड़कर उसके गमको कुरेदकर मन ही मन आनंदित हुआ करता था और जिसे हमने उसके अपने दु:खमें भी मुस्कराते देखा था, सुरजू भगतके इस गमसे प्रभावित हुए बिना न रह सका। वह उसके समीप बैठा हार्दिक सहानुभूतिसे समझा रहा था—"क्यों इस जन्मकी बात सोचकर दुखी होते हो। तुमने पिछले जन्ममें तुलसीसे यह रुपया कर्ज लिया था, जो तुम उस वक्त न लौटा सके। उसने इस जन्ममें तुम्हारा पड़ोसी बनकर तुमसे वह रुपया वापस लिया है।"

हरसिंहकी यह बात सुनकर सुरजू भगतके मनका बोझ किसी कदर हल्का हुआ। एक ज़रा खामोश रहा, फिर हसरत भरी निगाहोंसे हमारी ओर देखकर कहा—"एक सौ पन्द्रह रुपये सवा सात आने!"

हमने समझा बुझाकर और सहारा देकर उसे उठाया और उसकी कोठरीमें छोड़ आये। मालूम नहीं कि वह वहाँ पड़ा भी आहें भरता रहा अथवा चुप हो गया। क्योंकि हम बाहरसे आये एक बहुत बड़े नेताके लेक्चरका प्रबंध करने लगे जो शामको इसी हॉलमें होना था। जिसका दाखिला टिकट द्वारा था और सैकड़ों

रुपये आमदनीकी आशा थी।

दूसरे दिन भी हमें उसका खयाल न आया क्योंकि लेकचरसे आमदनी माकूल हुई थी, हमे उसका हिसाब करना था और लीडरके साथ दो तीन जगह टी-पार्टियोपर जाना पड़ा। तीसरे दिन पूछनेपर मालूम हुआ कि सुरजू भगत यहाँसे चला गया है। वह अपने भाईबंदोंके साथ चौबुर्जीकी ओर रहा करेगा। वह जानेको तैयार नहीं था। पर उस ब्राह्मणने बताया कि इस जगहसे तुम्हारा भाग उठ गया। अब इस कमरेमें रहना ठीक नहीं। बात उसकी समझमें आ गयी और वह चला गया।

इस घटनाको कई साल बीत गये। इस बीचमें सीमेंटकी इमारत बनकर तैयार हुई। जंग छिड़ी। इस इमारतका मालिक ब्लैक मार्केट अथवा लाभ प्राप्ति करके पहलेसे दस गुना अमीर बन गया। केन्द्रीय और प्रान्तीय सभाओंके चुनाव आये। काग्रेसका बड़ा जोर रहा ऐसे ऐसे लोग मेम्बर चुने गये जिनका काग्रेससे दूरका भी सम्बन्ध नहीं था। मुझे भी प्रान्तीय सभाका सदस्य बन जानेकी आशा थी। बहुत हाथ पैर मारे पर काग्रेस टिकट प्राप्त न कर सका हालाँकि इस बीचमे दो आन्दोलन चले और मै दोनोमें गिरफ्तार होकर जेल गया। अब भी वही आफिस सेक्रटरी अथवा हेडक्लर्क हूँ। मस्तिष्कमें तरह तरहके विचार उठते हैं। मन कटुतासे भर आता है। निराशाके इन क्षणोंमे मुझे सुरजू भगतकी याद आ जाती है और वह आकृति नजरोंके सामने तैरने लगती है जब वह शहतूतके पेड़ तले बैठा आहे भरता और चिल्लाता था—"एक सौ पन्द्रह रुपये सवा सात आने।"

—:*:—